Feb
2026

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

वर्तमान समय का सबसे बड़ा फ़ित्ना

मग़्रिबी तहज़ीब (पश्चिमी सभ्यता), उसके बड़े मरकज़ (केंद्र)–अमेरिका, यूरोप और रूस–ग़ैबी हक़ाइक़ (अदृश्य सच्चाइयों), रूहानियत (आत्मिकता), अख़्लाक़ (व्यवहारिकता) और आसमानी निज़ाम (ख़ुदाई निज़ाम) से बिल्कुल ख़िलाफ़ हैं और हालत–ए–जंग में हैं, और अब वह ज़माना क़रीब है कि जब यह तहज़ीब माद्दियत (भौतिकवाद) और सिनअती तरक़्क़ी (औद्योगिक विकास) के अंतिम बिंदु पर पहुँच जाएगी और उसका वह सबसे बड़ा नुमाइंदा और ज़िम्मेदार ज़ाहिर होगा जिसको नुबूव्वत की ज़बान में "दज्जाल" कहा गया है और जो एक तरफ़ माद्दी और सिनअती उरूज और दूसरी तरफ़ कुफ़्र, माद्दियत व इल्हाद (नास्तिकता) की दावत, तबई कुव्वतों (प्राकृतिक शक्तियों) की परस्तिश (पूजा) और उसके मुसख़्ख़र (वश में) करने वालों की गुलामी व बंदगी के बिल्कुल आख़िरी और इंतिहाई नुक्ता पर होगा और यह अहद–ए–आख़िर (अंतिम युग) का सबसे बड़ा फ़ित्ना, दुनिया की सबसे बड़ी मुसीबत और इस माद्दी तहज़ीब का चरम या अंतिम बिन्दु होगा जो कई सौ बरस पहले यूरोप में ज़ाहिर हुई थी।"

मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

यह इस्लाम दुश्मनी क्यों?!

"इस्लाम एक कामिल दीन और मुकम्मल निज़ाम–ए–हयात (जीवन प्रणाली) है और ज़िंदगी के तमाम पहलुओं पर मुहीत (छाया हुआ) है। दीगर मज़ाहिब की तरह इस्लाम में न रहबानियत (संन्यास) है और न ही मग़्रिबी तहज़ीब–ओ–तमद्दुन के मानने वालों की तरह सद–फ़ीसद आज़ादी, बल्कि यह मोतदिल (संतुलित) दीन और मुतवाज़िन निज़ाम–ए–ज़िंदगी है। इस्लाम की मुमताज़ खुसूसियत इन्फ़िरादी व इज्तिमाई (व्यक्तिगत और सामूहिक) ज़िंदगी और ख़लवत व जलवत (एकांत और सबके सामने) में अल्लाह के पास जवाबदेही का इस्तिहज़ार (ध्यान) है जो इसे दूसरे मज़हबों से मुमताज़ बनाता है।

इस्लाम का इम्तियाज़ (ख़ासियत) यह भी है कि यह मोहब्बत व उख़ुव्वत (भाईचारे) और भाई–चारगी का मज़हब है, इसमें जब्र व इक़राह (दबाव) और ज़ोर–ज़बरदस्ती की कोई गुंजाइश नहीं। इस्लाम अपने मानने वालों को ताकीद करता है कि मुन्किरीन और मुआन्दीन (विरोधियों) के साथ भी अद्ल व इन्साफ़ का मामला करो और एतिदाल (संतुलन) का मौक़िफ़ इख़्तियार करो। ज़्यादती का बदला उफ़ू–दरगुज़र (क्षमा) और ज़ुल्म का बदला हिल्म–ओ–बुर्दबारी (सहनशीलता) से देने की मिसालें आप (स०अ०व०) की सीरत–ए–तय्यिबा में बकसरत मौजूद हैं और सहाबा–ए–किराम (रज़ि०) ने भी आप की इक़्तिदा (पैरवी) में यही तर्ज़े इख़्तियार किया और यही सुलूक जंग में और क़ैदियों के साथ भी किया गया। इसकी सबसे बड़ी दलील बद्र के क़ैदियों के साथ आप (स०अ०व०) का मिसाली सुलूक और जंग–ए–हुनैन में अपने मुख़ालिफ़ जंगजुओं को माल–ए–ग़नीमत वापस करना है।

इस्लामी तालीमात पर अमल–पैरा मुस्लिम हुक्मरानों का भी हमेशा से ग़ैर–मुस्लिमों के साथ यह मौक़िफ़ रहा है कि उनके दीन–ओ–मज़हब का एहतिराम करते थे और उन्हें अपनी दीनी तालीमात पर अमल करने की मुकम्मल आज़ादी हासिल थी। यही वजह है कि कुछ ग़ैर–मुस्लिम मुसन्निफ़ीन (लेखकों) ने इस्लामी निज़ाम–ए–हुकूमत को "आदिलाना निज़ाम–ए–हुकूमत" क़रार दिया है और जदीद इस्तिलाह (आधुनिक शब्दावली) में हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसा निज़ाम है जिसमें ग़ैर–मुस्लिम अक़ल्लियतें (अल्पसंख्यक) अपने तमाम हुक़ूक़ से मुस्तफ़ीद होती हैं और उन पर जबरन इस्लामी क़ानून नाफ़िज़ नहीं किया जाता।

मौजूदा सियासी रहनुमाओं और क़ायदीन की इस्लाम और इस्लामी दावत से अदावत (दुश्मनी) और मुख़ालिफ़त ग़लतफ़हमी और दिलों को मुसख़्ख़र (वश में) कर लेने वाली पुरकशिश (आकर्षक) इस्लामी तालीमात से ख़ौफ़ का नतीजा है, क्योंकि इस्लाम का तेज़ी से फैलना, लोगों का इस्लाम क़बूल करना, बिल–ख़ुसूस तालीम–याफ़्ता तबक़ा का इस्लाम का मुताला (अध्ययन) करना और फिर उसे अपना लेना, उन्हें ख़ौफ़ज़दा किए देता है। चुनांचे इस्लाम दुश्मनी या इस्लाम को दहशतगर्द कहना दो वजह से हो सकता है: अव्वल तो ग़लतफ़हमी या इस्लाम से ना–वाक़िफ़ियत है, दूसरी वजह मग़्रिब में इस्लाम का बहुत तेज़ी से फैलना है, जैसा कि मीडियाई रिपोर्टों से मालूम होता है।

इस ग़लत नज़रिए की बुनियाद पर दुश्मन ताक़तें मज़हब–ए–इस्लाम और इस्लामी तहरीकों की ग़लत तस्वीर–कशी के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपना रही हैं। दूसरी तरफ़ दावत के मैदान में काम करने वालों में से बाज़ की ना–मुनासिब या इन्तिक़ामी (बदले के) जज़्बे से की गई कार्रवाई भी इस्लाम के ख़िलाफ़ जंग के लिए ईंधन का काम कर जाती है, तो कभी मग़्रिबी तंज़ीमों व तहरीकों की तक़लीद (नक़ल) में बाज़ इस्लामी तहरीकों के मुज़ाहमत वसाइल (प्रतिरोध के साधन) भी इसका सबब बनते हैं और नतीजतन इस्लाम को दहशतगर्दी का मज़हब कहा जाने लगा है।" (उद्धरण: दावत–ए–इस्लामी: मसाएल, अंदेशे और तक़ाज़े)

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद वाज़ेह रशीद हसनी नदवी (रह०)

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:02 फ़रवरी २०२६ ई० वर्ष:18

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

दो बड़ी नेअमतें

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"दो नेअमतें ऐसी हैं जिनके बारे में बहुत से लोग घाटे में रह जाते हैं: सेहत और फ़ुर्सत (फ़ारिग़ वक़्त)"

सही बुख़ारी: 6412

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू0पी0.229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

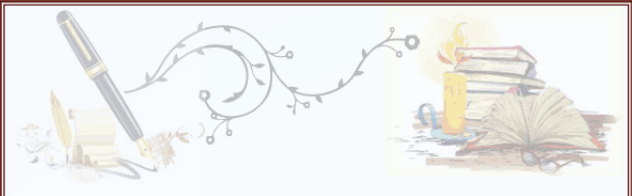

दीद की हसरत नहीं रही...

बद्रुद्दीन अजमल सीतापुरी

दुनिया को रहनुमा की ज़रूरत नहीं रही
बाद-अज़-नबी किसी की भी चाहत नहीं रही

जिसने किया है ख़्वाब में दीदार-ए-मुस्तफ़ा
उसको किसी के दीद की हसरत नहीं रही

कोशां है भाई-भाई तो क़त्ल-ओ-क़िताल में
अस्हाब-ए-मुस्तफ़ा की सी उख़ूव्वत नहीं रही

सुन्नत की डूबती हुई कश्ती नज़र में है
लगता है सुन्नतों से अक़ीदत नहीं रही

होती नहीं क़ुबूल दुआ मेरी इसीलिए
अस्हाब-ए-मुस्तफ़ा सी इबादत नहीं रही

दुनिया की फ़िक्र करते हैं उक़्बा से बेख़बर
मौला को अब मनाने की फ़ुर्सत नहीं रही

सिद्दीक़ (रज़ि०) ने लुटा दिया आक़ा पे जान-ओ-तन
बू-बक्र (रज़ि०) सी जहाँ में रफ़ाक़त नहीं रही

अपने पराए में करे इन्साफ़ एक सा
फ़ारूक़ (रज़ि०) जैसी अब तो अदालत नहीं रही

उम्मत को बैर-ए-रूमा किया वक़्फ़ आपने
उस्माँ (रज़ि०) सख़ी के जैसी सख़ावत नहीं रही

ताराज कर दे अपने मक़ाबिल को जो यहाँ
शेर-ए-ख़ुदा (रज़ि०) सी अब वो शुजाअत नहीं रही

अजमल ने सीखा जब से है मौला से मांगना
हर दर पे हाथ उठाने की आदत नहीं रही

इस अंक में:

उलमा व मस्जिद के इमामों से कुछ गुज़ारिशें.....3
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़वा क्या है?.....5
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

फ़स्ख़ व तफ़रीक़ के मसाएल.....7
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की ज़िन्दगियां.....9
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

अमरीका की दूसरे मुल्कों पर पेश-क़दमियां.....11
सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

बात समझाने में नर्मी और मुहब्बत.....13
मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

इल्हाद का तूफ़ान; असबाब और हल.....15
मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

रात के आख़िरी पहर.....17
मुहम्मद मुसअब नदवी

एक अज़ीम क़ुर्बानी की ज़रूरत.....19
मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

सम्पादकीय

उलमा व मस्जिद के इमामों से कुछ गुज़ारिशें

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

उलमा–ए–उम्मत हक़ीक़त में दिल की हैसियत रखते हैं और दिल के मुताल्लिक़ (संबंधित) हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) का इरशाद है कि: "जिस्म में गोश्त का एक टुकड़ा ऐसा है कि अगर वह सही हो जाए तो पूरे जिस्म का निज़ाम सही हो जाता है और अगर वह बिगड़ जाए तो पूरे जिस्म का निज़ाम ख़राब हो जाता है और वह टुकड़ा दिल है।" (सहीह मुस्लिमः 4178)

अल्लाह तबारक व तआला ने दिल को बादशाह बनाया है। वह जो फ़ैसला करता है, दिमाग़ उसको लागू करता है, मानो दिल की हैसियत बड़ी अहम है। इसीलिए जगह–जगह यह हुक्म दिया गया है कि हम सबसे बढ़कर अपने दिल की तरफ़ तवज्जो दें। फ़र्द (व्यक्ति) की इस्लाह दिल से होती है। अगर आदमी का दिल बन जाए और उसमें अल्लाह की याद समा जाए तो फिर उसकी ज़िंदगी का रुख़ कुछ और होता है। दिल की हैसियत ज़मीन की है। इस पर जैसी खेती की जाएगी, वैसे ही फल–फूल खिलेंगे बल्कि ऐसे मज़बूत पेड़ भी तैयार होंगे जिसके साये से बेशुमार लोग फ़ायदा उठाएंगे।

उलमा और अइम्मा–ए–मस्जिद (मस्जिदों के इमाम) का तबक़ा भी हक़ीक़त में मिल्लत के लिए दिल की हैसियत रखता है। अगर इनके अंदर इस्लाह (सुधार) का जज़्बा होगा, तक़वा का मिज़ाज होगा और इंसानियत का दर्द होगा तो यक़ीनन इसके ग़ैर–मामूली नतीजे सामने आएंगे। भटकी हुई इंसानियत को नई सिम्त (दिशा) मिलेगी और पूरी दुनिया को नफ़ा (लाभ) हासिल होगा।

उलमा अंबिया (नबियों) के वारिस हैं और अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) दीनार–ओ–दिरहम (माल–ओ–जायदाद) का वारिस नहीं बनाते बल्कि वह इल्म का वारिस बनाते हैं। वह इल्म जो अल्लाह की मारिफ़त (पहचान) पैदा करे। आख़िरत का ध्यान और जवाबदेही का एहसास पैदा करे और आख़िरत के अवाक़िब (अंजाम) से डराए और इंसान को सही रास्ता दे। फिर इसके नतीजे में आदमी के अंदर दर्द–ओ–फ़िक्र की कैफ़ियत पैदा हो और वह दूसरों तक इसको मुंतक़िल करे। उलमा के अंदर इस दर्द का होना ज़रूरी है। यह अंबिया की विरासत है और सबसे बढ़कर मोहसिन–ए–इंसानियत हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) की विरासत है। जब आदमी के अंदर एक कुढ़न और तड़प पैदा होती है और वह इख़्लास के साथ मैदान–ए–अमल में आता है तो अल्लाह तबारक व तआला उसके नतीजे में मुल्को में इंकलाब बरपा कर देता है।

मौजूदा हालात में हर आलिम–ओ–हाफ़िज़ और मस्जिद के इमाम का यह पहला फ़रीज़ा (कर्तव्य) है कि सबसे पहले हमें अपनी फ़िक्र करनी है। अपनी इस्लाह–ओ–तरबियत करनी है और अपने दिल को संवारना है। आज ज़रूरत है अपने ऊपर मेहनत करने और अपना मक़ाम–ओ–मन्सब पहचानने की। हक़ीक़त यह है कि हम जिन उलूम (इल्म) के तर्जुमान हैं, वह अल्लाह के नबी (स0अ0व0) के अता किये हुए हैं और जिस मुसल्ले पर खड़े होकर हम नमाज़ पढ़ाते हैं, यह वही मुसल्ला है जिस पर अल्लाह के नबी (स0अ0व0) ने अपनी पूरी उम्र–ए–मुबारक खड़े होकर लोगों की इमामत की और आप के बाद खुल्फ़ा–ए–राशिदीन ने यह फ़रीज़ा अंजाम दिया। बड़े अफ़सोस की बात है कि आज हमने अपने तर्ज़–ए–ज़िंदगी (जीवन शैली) से इसके मक़ाम को घटा दिया।

इस वक़्त उम्मत की सफ़ों में एक इंतिशार (बिखराव) बरपा है। लोगों का ईमान ख़तरे में है और इर्तिदाद (धर्म परिवर्तन) की एक आम फ़िज़ा है। इन हालात में सबसे बढ़कर हमारी यह ज़िम्मेदारी है कि ख़ास तौर पर आने वाली नस्ल की हम हिफ़ाज़त कर सकें। अगर इसके लिए कुछ अहम और ज़रूरी नुक़ात (बिंदुओं) को सामने रखकर काम किया जाए तो इंशाअल्लाह बड़ी आसानी होगी। मुनासिब यह है कि इन कामों के लिए मस्जिदों को सेंटर बनाया जाए। वह काम यह हैंः

1. जुमा के ख़िताबात (भाषण): जुमा के ख़िताबात पर ज़ोर दिया जाए और इसके लिए बाक़ायदा एहतिमाम किया जाए। इन ख़िताबात में ऐसे मौज़ूआत (विषयों) को लाया जाए जो इस वक़्त लोगों की एक ज़रूरत है। इन बयानों से अक़ीदे की इस्लाह हो, इबादत की तरफ़ रग़बत पैदा हो, समाज के मोहलिक अमराज़ (घातक बीमारियों) की निशानदेही हो, उनसे बचने का हल और तदबीर (उपाय) भी बयान की जाएं और उनसे होने वाले नुक़सान भी सुनाए जाएं ताकि लोगों में एक एहसास पैदा हो। इन ख़िताबात का वक़्त भी बहुत लंबा न हो लेकिन गुफ़्तगू ऐसी जामेअ (व्यापक) और मुफ़ीद (लाभकारी)

होना चाहिए जिसमें हर एक के लिए नफ़े का सामान हो।

2. हफ़्तावारी दर्स–ए–कुरआन और दर्स–ए–हदीस: हफ़्तावारी दर्स–ए–कुरआन और दर्स–ए–हदीस का निज़ाम बनाया जाए और इन दुरुस में भी वक़्त का ख़ास लिहाज़ रखा जाए। दर्स–ए–कुरआन में सबसे पहले सूरह फ़ातिहा, फिर तीसवें पारे की आख़िरी दस सूरतों का इन्तिख़ाब (चुनाव) होना चाहिए जो आम तौर पर नमाज़ों में पढ़ी जाती हैं। इसके बाद उन सूरतों का इन्तिख़ाब मुफ़ीद है जिनमें अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) के वाक़्यात हैं। दर्स में इन बातों को लाना मुफ़ीद होगा जिनका ताल्लुक़ समाज की इस्लाह (सुधार) से है।

3. काउंसलिंग सेंटर का क़याम (स्थापना): हर इलाक़े में चार या पांच मोहल्लों को जोड़कर एक काउंसलिंग सेंटर क़ायम किया जाए और वह बच्चियां और नौजवान लड़कियां जो कॉलेजेज़ या यूनिवर्सिटीज़ में तालीम हासिल करती हैं या वह कहीं मुलाज़िमत (नौकरी) करती हैं, इन सेंटर्स से उनको जोड़ा जाए और हफ़्तावारी प्रोग्राम मुन्अक़िद (आयोजित) किये जाएं, ताकि वहां उनकी सही तरबियत का इंतिज़ाम किया जाए और दीन पर उनका एतमाद बहाल हो सके। हफ़्तावारी दीनी इज्तिमा का सिलसिला भी इसी सिलसिले की एक कड़ी है।

4. मकातिब का जाल: हर इलाक़े के अंदर मस्जिदों में मकतबों का एक जाल बिछा दिया जाए। जो बच्चे स्कूलों में तालीम हासिल कर रहे हैं या जो बच्चे किसी स्कूल या मदरसे में नहीं पढ़ते, उन सबके लिए मस्जिद में मकतब का निज़ाम क़ायम किया जाए। वहां उनको कुरआन मजीद पढ़ाया जाए, उर्दू पढ़ाई जाए, उनका कलिमा दुरुस्त कराया जाए और दीन की ज़रूरी मालूमात दी जाएं ताकि मुसलमानों की नस्ल–ए–नव (नई पीढ़ी) दीन की ज़रूरी तालीम हासिल कर सके।

5. बैतुल–माल का क़याम: इलाक़ाई सतह पर एक बैतुल–माल (सामुदायिक कोष) का क़याम (स्थापना) भी मौजूदा हालात में एक मुफ़ीद अमल (लाभकारी काम) है, यह काम बड़ा नाज़ुक है लेकिन इसमें शुब्हा नहीं कि यह मिल्लत की एक ज़रूरत है। इस वक़्त बहुत से घरों का हाल यह है कि फ़क़्र–ओ–फ़ाक़ा (ग़रीबी और भुखमरी) की वजह से उनका ईमान ख़तरे में पड़ जाता है। बैतुल–माल वसीअ (विस्तृत) पैमाने पर क़ायम न किया जाए बल्कि दो–चार मोहल्लों को जोड़कर वहां के अहल–ए–सरवत (मालदार लोगों) से कम–अज़–कम दस–दस हज़ार रुपये की रक़म लेकर जमा कर ली जाए। अगर इसमें यह तय कर लिया जाए कि एक साल तक पांच हज़ार या उससे ज़्यादा रक़म हर महीने जमा की जाती रहेगी तो इस तरह एक बड़ी रक़म बैतुल–माल में जमा हो जाएगी। फिर इसके ज़रिये से ज़रूरतमंदों को क़र्ज़ दिया जाए और इसकी अदायगी के लिए दो लोगों को बतौर ज़ामिन (गारंटर) मुक़र्रर किया जाए और यह निज़ाम भी बनाया जाए कि महीने–महीने या साल–दो साल की मुद्दत में क़र्ज़ की यह रक़म वापस होती रहेगी और अगर किसी सूरत में रक़म वापस न मिल सके तो ज़कात की मद से इसको पूरा कर लिया जाए। इसका फ़ायदा यह होगा कि यह रक़म बढ़ती जाएगी और लोगों की बेशुमार ज़रूरतें आसानी से पूरी हो जाएंगी। इंशाअल्लाह यह तरीक़ा लोगों के लिए ग़ैर–मामूली नफ़ा–बख़्श होगा और उनके ईमान की सलामती का ज़रिया भी साबित होगा।

6. तहरीक–ए–पयाम–ए–इंसानियत: हर शहर और हर इलाक़े में तहरीक–ए–पयाम–ए–इंसानियत का काम भी इंतिहाई ज़रूरी है। अगर इस मुल्क में हमने अपने बिरादरान–ए–वतन (ग़ैरमुस्लिम भाइयों) को नज़रअंदाज़ किया तो हम बहुत दिनों तक अमन के साथ नहीं रह सकते। हमारी तमाम दीनी सरगर्मियों, मकातिब–ओ–मदारिस और मसाजिद के लिए इसकी हैसियत बुनियाद की है। इस काम की दो अहम बुनियादें हैं, यह काम नज़रियाती सतह (वैचारिक स्तर) पर ज़रूरी है और रिफ़ाही (कल्याणकारी) सतह पर भी। नज़रियाती तरीक़े पर काम गोया हमारा एक दावा है और रिफ़ाही काम इसकी अमली दलील है। इस मुल्क के मौजूदा हालात में यह बड़ा मुफ़ीद काम है। इंशाअल्लाह इसके ज़रिए हालात साज़गार होंगे और ग़लत–फ़हमियां भी दूर होंगी।

7. इस्लामिक स्कूल्स: हर इलाक़े में इस्लामिक स्कूल्स क़ायम किए जाएं। इसके बग़ैर नई नस्ल को ईमान पर बाक़ी रखना आसान काम नहीं है, इसलिए कि एक बड़ी तादाद स्कूलों ही में तालीम हासिल करती है और वहीं के माहौल और कल्चर से मुतास्सिर (प्रभावित) होती है। मुनज़्ज़म (व्यवस्थित) तौर पर इस्लामिक स्कूल का क़याम (स्थापना) भी ज़रूरी है।

अगर इन कुछ बुनियादी कामों की तरफ़ तवज्जो कर ली गई तो इंशाअल्लाह हालात बदलेंगे और हमारी नई नस्ल में दीन पर एतमाद बहाल होगा। ज़रूरत है कि हर इलाक़े में एक–एक घर का सर्वे किया जाए और इन चंद नुक़ात (बिन्दुओं) को सामने रखकर काम शुरू कर दिया जाए।

तक़्वा क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हराम और मुश्तबहात से बचने की तालीमः

"बेशक हलाल बिल्कुल साफ़ है और हराम भी बिल्कुल साफ़ है, लेकिन इन दोनों के दरमियान कुछ मुश्तबा (संदिग्ध) चीज़ें हैं जिन्हें बहुत से लोग नहीं जानते। जो शख़्स मुश्तबा चीज़ों से बच गया, उसने अपने दीन और अपनी इज़्ज़त को महफ़ूज़ कर लिया और जो मुश्तबा चीज़ों में पड़ गया, वह हराम में पड़ गया। उसकी मिसाल उस चरवाहे की सी है जो किसी महफ़ूज़ चरागाह के आस–पास अपने जानवर चराता है, ख़तरा है कि वह उसमें जा पड़े। सुन लो! हर बादशाह की एक महफ़ूज़ चरागाह होती है और सुन लो! अल्लाह की महफ़ूज़ चरागाह उसकी हराम की हुई चीज़ें हैं।" (मुस्लिम, किताबुल मुसाक़ात, बाब अख़ज़–अल–हलालः 4178)

इस हदीस में पहली बात यह फ़रमाई गई कि हलाल और हराम बिल्कुल स्पष्ट हैं। क़ुरआन और हदीस में इसकी तफ़सील मौजूद हैं और हदीसों में वह सारी चीज़ें और ज़्यादा वज़ाहत (स्पष्टता) के साथ बयान कर दी गई हैं।

कुछ चीज़ें ऐसी भी हैं जो मुश्तबा होती हैं और उनके बारे में यह तय करना मुश्किल होता है कि वे हलाल हैं या हराम। इस हदीस से यह मालूम होता है कि जो आदमी इन मुश्तबा चीज़ों से बच जाएगा, वह अपने दीन और अपनी इज़्ज़त को बचा लेगा, और अगर कोई इन मुश्तबा चीजों में पड़ जाएगा तो ख़तरा है कि वह हराम में मुब्तिला हो जाएगा।

इस दुनिया में ईमान वालों को जिन चीज़ों से सामना पड़ता है, ज़ाहिर है कि जब आदमी अपनी ज़िंदगी में आगे क़दम बढ़ाता है तो न जाने उसे किन–किन चीज़ों का सामना करना पड़ता है। इसलिए एक ईमान वाले की बुनियादी ज़िम्मेदारी है कि वह हलाल और हराम के सिलसिले में एहतियात करे और ग़ौर करता रहे। कुछ चीज़ें तो बिल्कुल खुली हुई हैं, जैसे शराब, सूद, ज़िना और चोरी हराम हैं; इनकी हुरमत में किसी को कलाम नहीं हो सकता। लेकिन इन्हीं चीज़ों में कुछ लोग चोरी के दरवाज़े निकाल लेते हैं और शक पैदा करते हैं। जैसे शराब हराम है, लेकिन मौजूदा ज़माने में कुछ ऐसी ड्रिंक्स भी बाज़ार में आ गई हैं जिनमें शक होता है। कई बार उनमें कुछ नशीली चीज़ें भी शामिल होती हैं और आदमी उनके इस्तेमाल में कोई हरज नहीं समझता।

इसी तरह सूद का मसला है। एक सूद वह है जिसकी हुरमत बिल्कुल साफ़ है, यानी आदमी इस शर्त पर किसी को पैसा दे कि इस क़र्ज़ के बदले में इतने पैसे ज़्यादा चाहिए। लेकिन एक सूद वह है जो बैंक से मिलता है। हम वहाँ अपने खाते में पैसे जमा करते हैं और उसके बदले वे हमें पैसे देते हैं। ज़ाहिर है कि यह भी सूद है, लेकिन इसमें कई बार लोग शक पैदा कर देते हैं और कहते हैं कि यह सूद की रक़म नहीं है, बल्कि बैंक वाले उस पैसे को कारोबार में लगाते हैं, लेकिन जब यह तय कर दिया गया कि हम तुम्हें तुम्हारे पैसे के बदले में इतना फ़ीसद बढ़ाकर देंगे, तो वह तिजारत नहीं रहती। तिजारत में तो उतार–चढ़ाव होता है, कभी फ़ायदा और कभी नुक़सान होता रहता है, लेकिन जब तय कर दिया गया तो वह सूद हो गया। इसके अलावा भी आजकल सूद की बहुत–सी ऐसी शक्लें राएज हैं जिनके बारे में लोग जवाज़ (सही होने) की बातें करते हैं और शक पैदा करते हैं। ज़ाहिर है ये सारी चीज़ें मुश्तबा में शामिल हैं।

इसी तरह अगर कोई आदमी दुकानदार है और सामान बेचता है, तो उसके लिए यह जानना ज़रूरी है कि किस तरह दुकानदारी की जाए और किन बातों का ख़याल रखा जाए। किस तरह अमानतदारी के साथ कारोबार करना है और अगर कोई चीज़ ख़राब है तो

उसे छुपाकर और धोखे से नहीं बेचना है। सच्ची बात यह है कि ज़्यादातर लोग इन बातों का ख़याल नहीं रखते, बल्कि तावीलें करते हैं और कहते हैं कि इस ज़माने में इतनी ईमानदारी से कारोबार नहीं चल सकता। याद रखिए, ज़माना बदल गया लेकिन अल्लाह के हुक्मों में कोई तब्दीली नहीं हुई। उसके हुक्म वही हैं और उनकी बुनियाद पर अल्लाह की तरफ़ से जो फ़ैसले होते हैं, वे भी वही हैं। इसलिए हमें खुद अपने आपको बदलने की ज़रूरत है। अगर एक ईमान वाला आदमी माहौल के मुताबिक़ अपने आपको ढाल ले, तो फिर उसमें और ग़ैर–ईमान वाले में क्या फ़र्क़ रह गया?

हमारी ज़िम्मेदारी यह है कि हमें माहौल को बदलना है, न कि उसी के रुख़ पर खुद चल पड़ना है। इस्लाम ने जो निज़ाम–ए–ज़िंदगी हमें दिया है, समाज के लिए उससे बेहतर कौन–सा निज़ाम हो सकता है? आज दुनिया की क़ौमें ऐसा निज़ाम पेश करने से आजिज़ हैं, और मुसलमानों के पास वह निज़ाम मौजूद है, लेकिन अफ़सोस कि मुसलमान उसे पेश करने से क़ासिर (असमर्थ) हैं, बल्कि अफ़सोस की बात यह है कि सारे हीरे–जवाहरात और ख़ज़ाने रखने के बावजूद वे दूसरों के सामने हाथ फैलाकर खड़े हैं। इससे बढ़कर अफ़सोस और शर्म की कोई बात नहीं हो सकती।

हदीस में साफ़ तौर पर वाज़ेह कर दिया गया है कि अगर कोई आदमी मुश्तबा चीज़ों में पड़ेगा तो वह हराम में मुब्तिला हो जाएगा और उसका बचना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन आज मुसलमानों का हाल यह है कि जो चीज़ें खुली हुई हराम हैं और जिनके बारे में सख़्त अल्फ़ाज़ आए हैं, उन्हें भी लोग बड़ी जुर्रत के साथ करते नज़र आते हैं।

मुश्तबा (संदिग्ध) से बचने के लिए बेहतर यह है कि आदमी उन लोगों से मसला पूछ ले जो दीन और शरीअत का गहरा इल्म रखते हों। लेकिन अब हाल यह है कि लोग मसला भी उसी से पूछते हैं जो उनके मतलब की बात कह दे। हक़ीक़त यह है कि इस तरह आदमी खुद अपने आपको धोखा दे रहा है। ऐसी सूरत–ए–हाल में हर मुसलमान को बहुत ज़्यादा तवज्जो देने की ज़रूरत है। अगर कोई हराम से नहीं बचेगा तो उसका ईमान ख़तरे में है। पता नहीं कि मरते वक़्त उसे कलिमा नसीब होगा या नहीं।

अहले–ईमान को हुक्म है कि वे सिर्फ़ हराम ही नहीं, बल्कि मुश्तबा चीज़ों से भी बचें। हक़ीक़त यह है कि मुश्तबा ही हराम तक पहुँचने की एक सीढ़ी हैं। जब आदमी यह सोचने लगता है कि इस दौर में ऐसी चीज़ों से बचना बहुत मुश्किल है, तो उसके बाद वह हराम में भी पड़ जाता है। इसी बात को समझाने के लिए आप (स0अ0व0) ने जो मिसाल बयान फ़रमाई, वह बेहद बलीग़ है।

पहले बादशाहों के ज़माने में बड़े–बड़े बादशाहों की अपनी चरागाहें और जंगल होते थे, जहाँ वे शिकार और सैर–ओ–तफ़रीह के लिए जाते थे। वहाँ किसी और का दाख़िला सख़्त मना होता था। अगर किसी का जानवर भी वहाँ चला जाता, तो सख़्त सज़ा दी जाती थी। हदीस में यही मिसाल दी गई कि अगर कोई आदमी किसी बादशाह की चरागाह के क़रीब अपना जानवर ले जाएगा, तो वह ख़तरे में पड़ जाएगा और सज़ा का हक़दार होगा। चाहे वह हज़ार बार सफ़ाई दे कि जानवर ग़लती से वहाँ पहुँच गया था, लेकिन बादशाह यही कहेगा कि तुम्हें मेरी हदों के क़रीब भी नहीं आना चाहिए था। आप (स0अ0व0) ने इस मिसाल के ज़रिये बात बिल्कुल साफ़ कर दी कि अगर कोई आदमी यह सोचेगा कि यहाँ तक अमल करना ठीक है और इस हद तक जाने की इजाज़त है, तो जब आदमी इस क़दर हदों के क़रीब पहुँच जाएगा, तो फिर उन हदों से गुज़र जाना भी उसके लिए मुश्किल नहीं रहेगा और न ही अपने आपको रोकना आसान होगा।

अल्लाह तआला अगर किसी के नफ़्स को क़ाबू में कर दे, तो यह बहुत बड़ी नेअमत है। नफ़्स को क़ाबू में किये बग़ैर हलाल और हराम में फ़र्क़ करना, हराम से बचना और ख़ास तौर पर मुश्तबा चीज़ों से बचना आसान नहीं है। लेकिन जब कोई आदमी अपने आपको क़ाबू में करने की कोशिश करता है, तो अल्लाह की मदद भी शामिल–ए–हाल होती है। हासिल यह है कि हमें हुदूदुल्लाह (अल्लाह की हदों) के क़रीब नहीं जाना चाहिए।

फ़स्ख़ व तफ़रीक़ के मसाएल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

तफ़रीक़ का बारहवाँ सबबः

निकाह का ग़ैर–कुफ़ू में होनाः

इस्लाम में मेयार सिर्फ़ तक़्वा हैः

इस्लाम तमाम इंसानों को एक निगाह से देखता है। रंग–ओ–नस्ल और गुरबत–ओ–मालदारी के सबब किसी को अफ़ज़ल या मफ़ज़ूल नहीं ठहराता। इस बारे में अल्लाह तआला का इरशाद हैः "ऐ लोगो! हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया और तुम्हें ख़ानदान और बिरादरियाँ बना दीं ताकि तुम एक–दूसरे को पहचान सको। बेशक अल्लाह के यहाँ तुममें सबसे ज़्यादा इज़्ज़त वाला वह है जो तुम में सबसे ज़्यादा परहेज़गार है। बेशक अल्लाह सब कुछ जानने वाला, पूरी ख़बर रखने वाला है।" (अल–हुजुरातः 13)

और हज्जतुल–विदा के मौक़े पर आँहज़रत (स0अ0व0) ने जो ख़ुत्बा दिया था, उसमें यह जुमले भी इरशाद फ़रमाए थेः

"ऐ लोगो! सुनो, तुम्हारा रब एक है और तुम्हारे बाप (हज़रत आदम अलैहिस्सलाम) एक हैं। सुन लो! किसी अरबी को किसी अजमी पर, किसी अजमी को किसी अरबी पर, किसी गोरे को किसी काले पर और किसी काले को किसी गोरे पर कोई फ़ज़ीलत हासिल नहीं है, सिवाय तक़्वा के।" (मुसनद अहमदः 23489)

शादी के वक़्त ज़ौजैन (मियां–बीवी) में किफ़ाअत (बराबरी) के एतिबार की हिकमतः

इस तरह अगरचे तमाम इंसान एक हैं, लेकिन यह भी हक़ीक़त है कि समाजी तौर पर उनके दरमियान बड़ा फ़र्क़ पाया जाता है। कोई गुरबत की वजह से अपने काम खुद करता है, बल्कि घर चलाने के लिए दूसरों के भी काम करता है, और किसी के कई ख़ादिम होते हैं और उसे अपना कोई काम खुद नहीं करना पड़ता। कोई ख़ानदान बाशरअ, नमाज़–रोज़ा और अहकाम–ए–शरीअत का पाबंद होता है और कोई बिल्कुल ही दीन से दूर होता है। फिर समाज में कुछ ख़ानदानों को ऊँचा समझा जाता है और कुछ को नहीं समझा जाता। कामयाब रिश्ते उसी वक़्त हो सकते हैं जब दोनों का मुस्तवा एक हो, वरना ख़तरा होता है कि रिश्ता देर तक न चल सके। इसीलिए अक्सर इमामों के यहाँ इसका ख़याल रखने को कहा गया और इसी सामाजी बराबरी को "किफ़ाअत" का नाम दिया गया। अलबत्ता अगर मर्द शादी कर रहा हो तो इसकी ज़रूरत नहीं समझी गई, लेकिन जब लड़की की शादी हो रही हो तो फ़ुक़हा ने निकाह में पायेदारी और इस्तेहकाम पैदा करने की ग़रज़ से इसकी रिआयत की कि मर्द ख़ानदान, अख़्लाक़, माल और तहज़ीब–ओ–शाइस्तगी के लिहाज़ से औरत का हम–सर हो, उससे कमतर न हो। इसलिए कि अगर मर्द औरत से कमतर हो तो इस बात का ज़्यादा अंदेशा है कि औरत एहसास–ए–बरतरी का शिकार हो जाए और शौहर के साथ ताल्लुक़ात खुशगवार न रह सकें। इसी बराबरी और हमसरी की रिआयत को "किफ़ाअत" कहा जाता है। (तलाक़ व तफ़रीक़, अज़ः मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी)

ग़ैर–बराबरी में निकाह की सूरतेंः

हज़रत थानवी (रह०) ने "अल–हीला–तुन–नाजिज़ा" में इसकी छह सूरतें और मौलाना अब्दुस्समद रहमानी ने "किताबुल–फ़स्ख़ वत–तफ़रीक़" में इसकी आठ सूरतें दर्ज की हैं। (देखिएः अल–हीलाः 150–157; किताबुल–फ़स्ख़ वत–तफ़रीक़ः 119–129)

लेकिन इनमें सबसे ज़्यादा अहम सूरत यह है कि कोई बालिग़ा औरत औलिया (बाप, भाई वग़ैरह) की इजाज़त के बग़ैर खुद से ग़ैर–बराबरी में निकाह कर

ले। अक्सर आइम्मा के नज़दीक चूँकि औरत का खुद से निकाह करना जाइज़ नहीं, इसलिए उनके नज़दीक यह बातिल है। अहनाफ़ के नज़दीक ज़ाहिरुर–रिवाया में अगरचे यह है कि निकाह मुनअक़िद हो जाएगा, लेकिन औलिया को एतराज़ का हक़ हासिल होगा। वे चाहें तो दारुल–क़ज़ा के ज़रिए इस निकाह को फ़स्ख़ करा सकते हैं। लेकिन अगर उन्होंने इसमें ताख़ीर कर दी, यहाँ तक कि लड़की का हमल ज़ाहिर हो गया, तो उनका यह इख़्तियार ख़त्म हो जाएगा। फ़िक़ एकेडमी ने ज़माने के हालात के पेश–ए–नज़र इसी रिवायत को अपनी तजावीज़ में राजेह क़रार दिया है। (देखिए: नए मसाइल और फ़िक़ एकेडमी के फ़ैसले, निकाह में किफ़ाअत, तजवीज़: 8/102)

और हसन बिन ज़ियाद की नवादिर की रिवायत यह है कि निकाह मुनअक़िद ही नहीं होगा। अक्सर फ़ुक़हा ने इस रिवायत को मुफ़्ता–बिहि क़रार दिया है, लेकिन क़ाज़ी को ज़माने के हालात के पेश–ए–नज़र फ़िक़ एकेडमी की तजवीज़ के मुताबिक़ ज़ाहिरुर–रिवाया पर अमल करना बेहतर होगा।

(शामी: 3/56–57, प्रिन्ट: दारुल–फ़िक्र, बैरूत)

जब ग़ैर–बराबरी से धोखे से निकाह हो जाए:

दूसरी अहम सूरत यह है कि लड़के वालों ने अपने को बराबर ज़ाहिर किया और बाद में मालूम हुआ कि वे बराबर के नहीं हैं। तो वली और लड़की को क़ाज़ी के पास जाकर निकाह फ़स्ख़ कराने का इख़्तियार रहेगा। लेकिन लड़की अगर बालिग़ा है तो अदम–ए–किफ़ाअत (ग़ैर बराबरी) का इल्म होते ही ज़रूरी होगा कि वह अपनी अदम–ए–रज़ामंदी ज़ाहिर कर दे, वरना ताख़ीर करने से उसका हक़ साक़ित हो जाएगा। और जब लड़की सय्यिबा हो तो सिर्फ़ ख़ामोशी से उसका हक़ ख़त्म नहीं होगा, यहाँ तक कि वह सराहतन या दलालतन अपनी रज़ामंदी ज़ाहिर कर दे। इसी तरह वली का इख़्तियार भी उस वक़्त तक बाक़ी रहेगा जब तक वह अपनी रज़ामंदी ज़ाहिर न कर दे। (शामी: 3/85–86, फ़तावा तातार ख़ानिया: 4/136, अलहीला: 153, नये मसाएल और फ़िक़ एकेडमी के फ़ैसले: 102)

जब अबअद की इजाज़त से ग़ैर–बराबरी में निकाह कर ले:

अगर वली–ए–अक़रब (जैसे बाप) की मौजूदगी में बालिग़ा लड़की ने वली–ए–अबअद (जैसे भाई) की इजाज़त से ग़ैर–बराबरी में निकाह कर लिया, तब भी वली–ए–अक़रब को दारुल–क़ज़ा में जाकर निकाह फ़स्ख़ कराने का इख़्तियार होगा और अगर वली–ए–अक़रब की रज़ामंदी से निकाह हुआ हो, तो वली–ए–अबअद को निकाह फ़स्ख़ कराने का इख़्तियार नहीं होगा और अगर वली–ए–अक़रब मौजूद न हो और विलायत भाइयों के पास हो, तो किसी एक भाई की इजाज़त से निकाह कराया गया हो, तो दूसरे भाइयों को निकाह फ़स्ख़ कराने का इख़्तियार नहीं होगा, चाहे निकाह छोटे भाई की इजाज़त से हुआ हो या बड़े भाई की, क्योंकि विलायत के बाब में तमाम भाई यकसाँ इख़्तियार रखते हैं। (हिंदिया: 1/293, किताबुन–निकाह, बाबुल–अक़फ़ा फ़िन्निकाह)

नाबालिग़ लड़की का निकाह ग़ैर–बराबरी में करना:

अगर किसी नाबालिग़ लड़की का निकाह बाप–दादा की मौजूदगी में उनसे नीचे दर्जे के किसी वली, जैसे भाई या चाचा ने, ग़ैर–बराबरी में या ग़बन–ए–फ़ाहिश (यानी जितना महर मुक़र्रर होना चाहिए, उससे बहुत कम) पर करा दिया, या नाबालिग़ लड़की का निकाह बाप या दादा ने कराया लेकिन वे मारूफ़–बसू–ए–अल–इख़्तियार थे (यानी नादानी या लालच की वजह से नामुनासिब रिश्ते कर लेने की शोहरत थी), या फ़ासिक़–ए–मुतहतक (एलानिया फ़ासिक़) थे, तो यह निकाह सरासर बातिल होगा।

(शामी: 3/66–68)

खुलासा यह कि किफ़ाअत और अदम–ए–किफ़ाअत के बारे में अगर शादी के बाद ज़ौजैन या दोनों ख़ानदानों में कोई झगड़ा हो, तो अगरचे इसकी कई सूरतें हैं और हर एक के अलग अहकाम हैं, इनमें से कुछ में निकाह मुनअक़दि ही नहीं होता, लेकिन तमाम सूरतों में किसी दारुल–क़ज़ा के ज़रिए ही फ़ैसला कराना ज़्यादा आफ़ियत वाला है। वल्लाहु अअलम।

अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की ज़िन्दगियां

अहले ईमान के लिए नमूना

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त ने इस कायनात में जिन हज़रात को सबसे ऊँचा मक़ाम अता फ़रमाया और जिनकी इत्बा (अनुसरण) पर अपनी मदद का वादा फ़रमाया और अपनी मदद पर अपने ग़लबे का वादा फ़रमाया, वे हज़रात अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) हैं। हक़ीक़त में हमारे जितने भी दीनी मदरसें हैं, ये सब उन्हीं हज़रात अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) के नक़्शे–क़दम पर चलने की एक कोशिश और उनकी यादगारें हैं, ताकि अल्लाह की ज़मीन पर अल्लाह के बंदे, अल्लाह के दीन से वाबस्ता होकर अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त की रज़ामंदी और अपनी हक़ीक़ी मुराद तक पहुँच जाएँ।

अल्लाह ने अपने रसूल (स0अ0व0) के सामने और आप (स0अ0व0) के ज़रिये पूरी उम्मत बल्कि पूरी इंसानियत के सामने अपने पाक कलाम में हज़रात अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) के इंतिहाई दिलकश नमूने पेश फ़रमाए हैं और अल्लाह ने आप (स0अ0व0) से ख़िताब करके यह बात भी इरशाद फ़रमाई कि:

"और रसूलों के जो भी वाक़यात हम आपको सुना रहे हैं, वह इसलिए कि उससे आपके दिल को ताक़त दें।" (सूरह हूदः 120)

इस आयत में आँहज़रत (स0अ0व0) को मुख़ातिब बनाकर गोया तमाम अहले–ईमान को एक पैग़ाम दिया जा रहा है। हज़रात अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) में (नऊज़ुबिल्लाह) कोई भी बुज़दिल नहीं था। कोई भी हालात से मायूस नहीं था। कोई भी हौसला हारने वाला नहीं था और कोई भी हिम्मत हारने वाला नहीं था। बल्कि वे सबके सब इंतिहाई दर्जे बहादुर, अपने मक़सद से बेइंतिहा लगाव रखने वाले और आख़िरी हद तक यह यक़ीन रखने वाले थे कि अल्लाह तआला हमें मंज़िल–ए–मक़सूद तक पहुँचा देगा। अंबिया किराम (अलैहिमुस्सलाम) का यह वह वस्फ़ है जो अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त ने उनके मुत्तबिईन (अनुयायियों) को भी अता फ़रमाया है। कुरआन मजीद में एक जगह इरशाद है:

"कितने ही ऐसे नबी हुए हैं कि उनके साथ मिलकर अल्लाह वाले लड़े, तो अल्लाह के रास्ते में जो भी तकलीफ़ उन्हें पहुँची, न उससे उन्होंने हिम्मत हारी, न वे कमज़ोर पड़े और न वे दबे; और अल्लाह जमने वालों को पसंद फ़रमाता है।" (सूरह आले इमरानः 146)

कुरआन मजीद की शायद यह अकेली ऐसी आयत है जिसमें एक ही जगह कमज़ोरियों से संबंधित तमाम बातों को बयान कर दिया गया है। यानी न वे कभी सुस्त पड़े, न उनके अंदर ढीलापन आया, न उनके अंदर कमज़ोरी आई और न वे टूटे। अल्लाह तआला ने यह बात क़िताल (जंग) के मौक़े पर इरशाद फ़रमाई है, और यह वह मौक़ा होता है जब इंसान की जान दाँव पर लगी होती है। ज़ाहिर है, जब वे लोग इस मामले में ढीले नहीं पड़े तो फिर इसके मुक़ाबले में किसी भी चीज़ में ढीले पड़ने का सवाल ही पैदा नहीं होता। अब हम ग़ौर करें कि जब अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) के मुत्तबिईन का यह हाल है तो ख़ुद हज़रात अंबिया का क्या हाल रहा होगा!

जो लोग अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) के नक़्शे–क़दम पर चलते हैं, उनके सामने हालात चाहे जैसे भी हों, अल्लाह उन्हें ऐसी हिम्मत और हौसला देता है कि वे हालात के सीने पर चढ़कर काम करते हैं। अल्लाह तआला ने कुरआन मजीद में यह बात इरशाद फ़रमाई:

"और जो ईमान नहीं लाते, उनसे आप कह दीजिए कि तुम अपनी जगह काम में लगे रहो, हम भी लगे हुए हैं; और तुम इंतज़ार करो, हम भी इंतज़ार कर रहे हैं।" (सूरह हूदः 121–122)

सच्ची बात यह है कि अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त हालात का ख़ालिक़ और मालिक है। अगर वह चाहे तो सेकंडों के अंदर इस कायनात की काया पलट हो सकती है। तमाम ताक़तें अल्लाह की हैं और सब कुछ उसी के क़ब्ज़ा–ए–कुदरत में है। कुरआन मजीद में इस तरह के जितने भी हक़ायक़ बयान हुए हैं, हक़ीक़त में वे सब बातें खुदा के मुनकिरों और मुआनिदीन के लिए धमकी हैं और खुदा से मोहब्बत करने वालों के लिए बशारत भी। कुरआन में साफ़–साफ़ एलान है:

"और तुम जो भी करते हो, तुम्हारा रब उससे बेख़बर नहीं है।"

अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त चोरों की चोरी भी देख रहा है और ख़ाइनों की ख़यानत भी। इसी तरह वह सालिहीन की सलाहीयत को भी देख रहा है और मुजाहिदीन जो अल्लाह के रास्ते में कोशिश और मेहनत करते हैं, उनकी तमाम कोशिशें भी उसकी निगाह में हैं। इसीलिए अगर कोई आदमी दीन के लिए जद्दोजहद करता है तो अल्लाह की तरफ़ से मदद का वादा है। इरशाद है:

"यक़ीनन हम अपने रसूलों की और ईमान वालों की दुनिया की ज़िंदगी में भी मदद करते हैं और उस दिन भी करेंगे जब गवाह खड़े होंगे।" (सूरह ग़ाफ़िर: 51)

अहले–ईमान का मामला सिर्फ़ दुनिया तक सीमित नहीं, बल्कि उसके बाद की ज़िंदगी से भी जुड़ा हुआ है। हमें इस दुनिया में अल्लाह ने काम करने के लिए भेजा है, लेकिन बड़े अफ़सोस की बात है कि हमें अपनी ज़िम्मेदारी का कोई एहसास नहीं। गोया हम यह समझते हैं कि दीन का काम करना हमारी ज़िम्मेदारी नहीं, बल्कि चंद अफ़राद की है। क्या हम यह समझते हैं कि हम सिर्फ़ गप मारने, वक़्त ज़ाया करने और मोबाइल चलाने के लिए पैदा हुए हैं और दीन का काम करने के लिए दूसरे लोग हैं? हमें समझना चाहिए कि अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त ने हमें ख़्वाब और ख़यालात की ज़िंदगी गुज़ारने के लिए, चंद सिक्के कमाने के लिए और दुनिया में कुछ नाम कमाने के लिए पैदा नहीं किया है। बल्कि उसने हमारी बहुत ऊँची क़ीमत लगाई है। उसका एलान यह है कि एक मुसलमान को अल्लाह के सिवा कोई दूसरा ख़रीद नहीं सकता। इरशाद–ए–इलाही है:

"बेशक अल्लाह ने ईमान वालों से उनकी जानों और उनके मालों को इस बदले में ख़रीद लिया है कि उनके लिए जन्नत है।" (सूरह तौबा: 111)

अपनी हक़ीक़त को पहचानना और अपने मक़ाम व मंसब से वाक़िफ़ होना बहुत ज़रूरी है। इससे बढ़कर अफ़सोस का मक़ाम क्या होगा कि आज हमें खुद मुसलमानों से यह अपील करनी पड़े कि तुम अपनी औलाद को सच्चा मुसलमान बनाओ, साहिब–ए–ईमान बनाओ। याद रखिए! अगर किसी ने अस्री तालीम को दीन पर फ़ौक़ियत दी तो उसने गोया अपने आप को अल्लाह के सामने ज़लील होने के लिए पेश कर दिया।

हज़रात अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) की तालीमात के मुक़ाबले में भी दुनियावी इल्म को पेश किया गया था। मुमकिन है वह इल्म मुफ़ीद हो, लेकिन जब उसी इल्म को अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) के इल्म के मुक़ाबले में पेश किया गया तो अल्लाह ने उन्हें इस तरह रगड़ा कि उनका नामो–निशान भी बाक़ी न रहा। इरशाद–ए–इलाही है:

"जब हमारे रसूल उनके पास खुली निशानियाँ लेकर आए तो वे अपने ज्ञान पर इतराए और आख़िरकार जिस चीज़ का वे मज़ाक उड़ाते थे, उसी की गिरफ़्त में आ गए।" (सूरह ग़ाफ़िर: 83)

अंबिया दुनिया में वह इल्म लेकर आए जिसकी बुनियाद अमल पर, इख़्लास पर और तक़वा पर थी। अब अगर इस इल्म के मुक़ाबले में कोई दूसरा इल्म लाया जाए और उस पर नाज़ किया जाए, फिर अंबिया के इल्म को हक़ारत भरी निगाहों से देखा जाए, तो ज़ाहिर है कि उससे बढ़कर नजिस और मलऊन कोई नहीं।

सच्ची बात यह है कि मौजूदा हालात में अगर मुसलमान यह चाहते हैं कि वे वक़्त के धारे को बदल दें और हालात पर असरअंदाज़ हों, तो उन्हें अपनी नस्ल–ए–नव को अंबिया के मिशन और उनके उलूम से निस्बत पैदा करनी होगी और अपनी ज़िंदगी का महवर वही बनाना होगा जो अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) और उनके मुत्तबिईन का था। यही वह रास्ता है जो दुनिया और आखरित में कामयाबी का जामिन है।

अमरीका की
दूसरे मुल्कों पर पेश-क़दमियां

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

अमेरिका के जुर्म का इतिहास एक लम्बे और विवादित सिलसिले पर आधारित है, जिसका असर दुनिया के विभिन्न हिस्सों में आज तक महसूस किए जाते हैं। इस इतिहास की शुरूआत मूल अमेरिकी निवासी (रेड इंडियन्स) की नस्ल–कुशी से होता है। जिन्हें ज़मीनों से बेदख़ल किया गया और लाखों लोग क़त्ल या जबरी पलायन पर मजबूर हुए। इसके बाद अफ़्रीक़ी गुलामी का ज़ालिमाना निज़ाम क़ायम हुआ, जिसमें इंसानों को ख़रीद–ओ–फ़रोख़्त का सामान बना दिया गया और सदियों तक उन पर नाक़ाबिले–बयान मज़ालिम ढाए गए।

बीसवीं सदी में अमेरिका ने साम्राज्यवादी ताक़त के तौर पर कई देशों में मुदाख़लत की। हीरोशीमा और नागासाकी पर एटम बम गिराना इंसानी इतिहास का बदतरीन जुर्म समझा जाता है, जिसमें लाखों बेगुनाह लोग मारे गए। वियतनाम, कोरिया, इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान की जंगों में भी लाखों जानें गईं और पूरे के पूरे समाज तबाही से दोचार हुए। ग्वांतानामो बे जेल, अबू ग़रीब के तशद्दुद स्कैंडल और ड्रोन हमले इंसानी हुक़ूक़ की संगीन ख़िलाफ़वर्ज़ियों की मिसालें हैं।

इसके अलावा अमेरिका ने दुनिया भर में राजशाहियों का समर्थन, चुनी हुई हुकूमतों का तख़्ता उलटने और आर्थिक पाबंदियों के ज़रिए अवाम को इज्तिमाई सज़ा देने जैसे इक़दामात किए। अगरचे अमेरिका खुद को जम्हूरियत और इंसानी हुक़ूक़ का अलमबरदार कहता है, लेकिन उसके जुर्म की तारीख़ इस दावे पर संगीन सवाल खड़े करती है।

अमेरिका की दूसरे देशों पर पेश–क़दमियाँ एक लम्बा ऐतिहासिक क्रम रखती हैं, जिनके पीछे भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक और वैचारिक कारण कार्य कर रहे हैं। ये पेश–क़दमियाँ अक्सर फ़ायदे के दावों के बावजूद तबाह–कुन नतीजे का बाइस बनी हैं।

अमेरिका ने 1776ई0 से अब तक 500 से ज़्यादा सैन्य कार्यवाहियां की हैं, जिनमें से 60 प्रतिशत 1950ई0 के बाद हुईं और एक तिहाई 1999ई0 के बाद। ये पेश–क़दमियाँ, मुदाख़लतें (Interventions) या सैन्य कार्यवाहियों (Military Advances) की सूरत में हुईं, जिनका मक़सद अमेरिका की क़ौमी सलामती, जम्हूरियत की हिफ़ाज़त या इंसानी हुक़ूक़ को यक़ीनी बनाना बताया जाता है, जबकि इसके पस–ए–पर्दा कुछ और ही मंसूबाबंदी अमल में होती है। इसने नतीजे में अक्सर क्षेत्रीय अस्थिरता, आर्थिक नुक़सान और आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है।

अमेरिका की कार्यवाहियों का आरम्भ उन्नीसवीं सदी में दक्षिणी अमेरिका और एशिया में हुआ, जैसे 1858ई0 में पैराग्वे पर हमला और 1871ई0 में कोरिया पर छापा। बीसवीं सदी में पहले और दूसरे विश्व युद्धों ने अमेरिका को वैश्विक शक्ति बना दिया, जिसके बाद शीत युद्ध (1948–1991) में 200 से ज़्यादा कार्यवाहियां हुईं। 1991ई0 के बाद केवल एकध्रुवीय दुनिया में कार्यवाहियों की संख्या बढ़कर 251 हो गई, जिसमें इराक़, अफ़ग़ानिस्तान और लीबिया शामिल हैं।

अमेरिका की मुदाख़लतें अक्सर क़ौमी सलामती और अक़वाम–ए–मुत्तहिदा के इत्तिहादियों की हिफ़ाज़त के नाम से हुईं, जबकि असल मक़सद मित्रों की मदद, हरीफ़ों को रोकना और ख़ास तौर पर तेल व दूसरे आर्थिक संसाधनों पर वर्चस्व क़ायम करना रहा। मिसाल के तौर पर मशरिक़–ए–वुस्ता (मिडिल ईस्ट) में कार्यवाहियों का ताल्लुक़ इस्राईल के समर्थन और ईरान जैसे दुश्मनों को रोकने से है, जहाँ अमेरिका ने 228 अरब डॉलर फ़ौजी मदद दी।

आर्थिक तौर पर यह कार्यवाहियां अमेरिकी कंपनियों की हिफ़ाज़त और बाज़ारों में उनके वर्चस्व क़ायम रखने के लिए थीं, जैसे ग्वाटेमाला (1954) में यूनाइटेड फ़्रूट कंपनी की जायदाद की हिफ़ाज़त और चिली (1973) में अलेन्दे (Allende) की हुकूमत का तख़्ता उलटना।

मानवाधिकार और लोकतन्त्र फैलाने का खूबसूरत दावा भी एक अहम कारण रहा, जैसे सोमालिया (1993) में मानवीय संकट रोकना या इराक़ में सद्दाम को हटाना। रिपोर्टस बताती हैं कि मानवाधिकारों की रक्षा कार्यवाहियों का सबसे मज़बूत कारण बताया जाता है।

वियतनाम जंग (1960–1975):

अमेरिका ने कम्युनिज़्म रोकने के लिए कार्यवाही की। वियतनाम जंग में अमेरिका की मुजरिमाना हरकतें इंसानी तारीख़ के काले पन्नों में शुमार होती हैं। इस जंग में 58,000 अमेरिकी फ़ौजी मारे गए, लेकिन अमेरिकी सेना ने बड़े पैमाने पर शहरी आबादी को निशाना बनाया। नेपाम

बमों और एजेंट ऑरेंज जैसे रसायनिक हथियारों के इस्तेमाल से लाखों अफ़राद मारे गए, विकलांग और बीमार हुए, जिनके असरात आज तक जारी हैं। माई लाई क़त्ल–ए–आम में सैकड़ों बेगुनाह औरतें, बच्चे और बूढ़े क़त्ल किए गए। देहात जलाना, सामूहिक हत्या, जबरन पलायन और हिंसा आम हो चुकी था। ये तमाम कार्यवाहियां अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों और मानवीय मूल्यों के खुले विरोधी थे। इस जंग में अमेरिका की हार और क्षेत्रीय अस्थिरता लंबे अर्से तक जारी रही।

अफ़ग़ानिस्तान (2001–2021):

अफ़ग़ानिस्तान की जंग में अमेरिका की मुजरिमाना हरकतों ने मानवाधिकारों और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों को सख़्त नुक़सान पहुँचाया। 9/11 के बाद अल–क़ायदा और तालिबान के ख़िलाफ़ 20 सालों तक जंग लड़ी गई, जिसमें 2,400 अमेरिकी मारे गए और 2.26 ट्रिलियन डॉलर ख़र्च हुए। हवाई बमबारी और ड्रोन हमलों में हज़ारों बेगुनाह नागरिक, ख़ासकर औरतें और बच्चे, जान से गए। शादियों, जनाज़ों और देहातों पर हमले आम रहे। ग्वांतानामो बे और बगराम जेलों में क़ैदियों पर हिंसा, ग़ैर–क़ानूनी हिरासत और अपमानजनक सुलूक किया गया। रात के छापों में घरों की बेहुरमती और जबरी गिरफ़्तारियाँ हुईं। दो दहाइयों की जंग ने अफ़ग़ानिस्तान को तबाही, ग़ुरबत और अस्थिरता के सिवा कुछ न दिया। आख़िरकार तालिबान की वापसी हुई और अमेरिका को निकलना पड़ा।

इराक़ (2003–2011):

इराक़ जंग में अमेरिकी मुजरिमाना हरकतों ने उस क्षेत्र को सख़्त तबाही से दोचार किया। बड़े पैमाने की तबाही के हथियारों के झूठे दावों पर हमला किया गया, जिसमें 4,900 अमेरिकी और लाखों इराक़ी मारे गए, 2 ट्रिलियन डॉलर ख़र्च हुए और इराक़ पूरी तरह तबाह हो गया। जिससे दाइश (ISIS) का उरूज हुआ। 2003ई0 में रसायनिक हथियारों के बहाने हमला किया गया। बुनियादी ढांचा तबाह हुआ। अबू ग़रीब जेल में हिंसा और अपमान ने अमेरिकी दावों को बेनक़ाब कर दिया। फ़ल्लूजा पर बमबारी, वाइट फ़ॉस्फ़ोरस का इस्तेमाल, ड्रोन हमले और निजी फ़ौजी कंपनियों की ज़्यादतियाँ संगीन जुर्मों में शामिल हैं। इस जंग ने इराक़ को अस्थिरता, साम्प्रदायिकता और अशांति के मुहाने पर ला खड़ा किया।

इन कार्यवाहियों से लाखों शहरी मारे गए, अरबों डॉलर ख़र्च हुए और शरणार्थी संकट पैदा हुआ, जैसे इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान में 30 लाख से ज़्यादा लोगों का पलायन। अमेरिका का कुल ख़र्च हज़ारों बिलियन डॉलर तक पहुँच चुका है।

इन कार्यवाहियों ने कई गुटों (जैसे दाइश, अल–क़ायदा) को जन्म दिया और इलाक़ाई ताक़तों (ईरान, रूस) को मज़बूत किया। अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय साख प्रभावित हुई, जैसे लीबिया में नाकामी से यूरोप में शरणार्थियों का संकट पैदा हुआ।

यह पेश–क़दमियाँ अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों को कमज़ोर करती हैं और सहयोगियों का भरोसा ख़त्म करती हैं, जैसे नाटो में तनाव।

हाल में अमेरिका की ओर से वेनेज़ुएला के राष्ट्रपति के अपहरण की घटना सामने आई। वेनेज़ुएला की हुकूमत ने दावा किया कि अमेरिका ने ख़ुफ़िया कार्रवाइयों और किराए के फ़ौजियों के ज़रिए राष्ट्रपति निकोलस मादुरो को हटाने या अग़वा करने की साज़िश की, ताकि मुल्क में अपनी पसंद की हुकूमत क़ायम की जा सके। 2020ई में एक नाकाम कार्रवाई के बाद यह आरोप और मज़बूत हुए, जिनमें अमेरिकी नागरिकों की गिरफ़्तारी भी शामिल थी।

दूसरी हालिया घटना प्ब्ब् (अमेरिकी इमिग्रेशन एंड कस्टम्स एनफ़ोर्समेंट) का दहशतगर्दाना तर्ज़–ए–अमल है। हुकूमत की ओर से यह हुक्म जारी हुआ है कि रोज़ाना तीन हज़ार लोगों को गिरफ़्तार कर के डिटेंशन में डाला जाए। इसके बाद प्ब्ब् पर इस क़दर बोझ बढ़ गया कि वे बिना किसी तफ़रीक़ के गिरफ़्तारियाँ कर रहे हैं। यह पहली दफ़ा है जब अमेरिका की अंदरूनी पॉलिसी इस क़दर नाकाम साबित हुई है। नतीजतन छापों, जबरन गिरफ़्तारियों, हिरासती मराकिज़ में इंसानी हुक़ूक़ की कथित ख़िलाफ़वर्ज़ियों और ख़ौफ़ की फ़िज़ा क़ायम होने से आम शहरीयों में अदम–तहफ़्फ़ुज़ की फ़िज़ा पैदा हो रही है।

अमेरिका की यह कार्यवाहियां अक्सर क्षणिक लाभ के मुक़ाबले में लम्बे अर्से के लिए नुक़सानदेह साबित हुई हैं, जो अमेरिकी विदेश पॉलिसी और अब अंदरूनी पॉलिसी के भी अज़–सर–ए–नौ जायज़े की मुतक़ाज़ी हैं। मुस्तक़बिल में भी ऐसे हालात देखने को मिलेंगे, क्योंकि अमेरिकी हुकूमत इस्राईल और अपने मुल्क के सरमायादारों के हित में काम करती है। और उनका यह नारा बार–बार सुनाई देता है: "यह ताक़तवरों और बहादुरों का मुल्क है" और "हम पर अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून लागू नहीं होते!"

बात समझाने में नर्मी और मुहब्बत

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) निहायत शफ़ीक़, बड़े मेहरबान और बहुत ही नर्म दिल थे, जब भी दो कामों में से आपको एक काम करने का इख़्तियार दिया जाता तो आप अपनी उम्मत की आसानी की ख़ातिर आसान काम को तरजीह देतेः

"तुम्हारे पास तुम ही में से एक पैग़म्बर आए हैं, तुम्हारी तकलीफ़ उनको गिराँ (भारी) मालूम होती है और तुम्हारी भलाई के बहुत ख़्वाहिशमंद हैं और मोमिनों पर निहायत शफ़क़त करने वाले (और) मेहरबान हैं।" (अल–तौबाः १२८)

एक शख़्स आप (स0अ0व0) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहाः मैं हलाक हो गया या रसूल अल्लाह (स0अ0व0)! आप (स0अ0व0) ने फ़रमायाः कैसी हलाकत?!

उसने कहाः मैंने रमज़ान में अपनी बीवी से सोहबत कर ली। आप (स0अ0व0) ने पूछाः क्या तुम्हारे पास गुलाम है जिसको आज़ाद कर सकते हो?

उसने कहाः नहीं।

आप (स0अ0व0) ने पूछाः क्या दो महीने के लगातार रोज़े रख सकते हो?

उसने कहाः नहीं।

आप (स0अ0व0) ने कहाः क्या साठ मिस्कीनों (ग़रीबों) को खाना खिला सकते हो?

उसने कहाः नहीं।

वो आप (स0अ0व0) के पास बैठा ही रहा यहाँ तक कि आप (स0अ0व0) के पास कुछ खजूरें आईं, आप (स0अ0व0) ने उससे कहाः इन खजूरों को सदक़ा कर दो। उसने कहाः क्या मुझसे ज़्यादा कोई इन खजूरों का मुस्तहिक़ हो सकता है? उसकी बात सुनकर आप मुस्कुराए हत्ता कि आप (स0अ0व0) के दंदान–ए–मुबारक (दांत) चमकने लगे, आप (स0अ0व0) ने फ़रमायाः जाओ और इन खजूरों को अपने घर वालों को खिलाओ। (मुत्तफ़क़ अलैह)

आप (स0अ0व0) की नर्मी, शफ़क़त और मोहब्बत से हर शख़्स वाक़िफ़ था, आपको जो तकलीफ़ पहुँचाता आप उसको हदिया देते, आप (स0अ0व0) की पूरी ज़िंदगी अफ़्व–व–दरगुज़र में गुज़री, आप (स0अ0व0) की रहमत पूरी इंसानियत के लिए थी।

हज़रत मुआविया बिन अल–हकम अस–सुलमी (रज़ि0) से मरवी है कि हम अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) के साथ नमाज़ पढ़ रहे थे, इतने में एक शख़्स को छींक आ गई, मैंने उस पर कह दियाः ''यरहमुकल्लाह''। लोगों ने मुझे तिरछी निगाहों से देखा, मैं नमाज़ ही में बोल पड़ा, क्या बात है? तुम सब इस तरह मुझे क्यों देख रहे हो? वो सब अपने हाथों को अपनी रानों पर मारने लगे, जब मैंने देखा कि वो सब मुझको चुप करा रहे हैं तो मैं ख़ामोश हो गया। कुर्बान जाएँ मेरे माँ–बाप आप (सल्ल.) की ज़ात पर, आप (स0अ0व0) जैसा मुअल्लिम और मुरब्बी मैंने अपनी पूरी ज़िंदगी में नहीं देखा। जब आप (स0अ0व0) नमाज़ से फ़ारिग़ हुए तो आप (स0अ0व0) ने न मुझे डाँटा, न मारा, न मलामत की, सिर्फ़ इतना फ़रमायाः

"नमाज़ में इंसानी कलाम दुरुस्त नहीं, नमाज़ नाम है तस्बीह व तकबीर का और कुरआन मजीद की क़िरात का।"

यह आपकी अपनी उम्मत के साथ मेहरबानी ही थी कि आप (सल्ल.) ने अपनी उम्मत को "सौम–ए–विसाल" (लगातार बग़ैर इफ़्तार के रोजे

रखना) से मना किया कि कहीं इस पर फ़र्ज़ न कर दिया जाए, मिस्वाक को फ़र्ज़ नहीं किया कि कहीं यह फ़र्ज़ियत उम्मत पर दुश्वार न हो जाए।

हज़रत अनस (रज़ि0) बयान करते हैं कि वो नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ मस्जिद में बैठे थे, एक शख़्स खड़ा होकर पेशाब करने लगा, सहाबा–ए–किराम (रज़ि0) उसको रोकने के लिए आगे बढ़े। आप (स0अ0व0) ने कहाः इसको छोड़ दो, कुछ मत कहो और पेशाब कर लेने दो। जब वो पेशाब कर चुका तो आप (स0अ0व0) ने उसको बुलाया और उससे मोहब्बत व नर्मी से कहाः यह मस्जिद है और इसमें पेशाब करना मना है, यह जगह सिर्फ़ ख़ुदा के ज़िक्र, उसकी याद और उसकी किताब की तिलावत के लिए है। फिर आप (स0अ0व0) ने एक आदमी को हुक्म दिया कि एक डोल पानी लाकर इस पर बहा दो, वो साहब पानी ले आए और जिस जगह पेशाब किया गया था उस जगह पर पानी बहा दिया गया और बात यहीं पर ख़त्म हो गई।

एक नौजवान आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ और अर्ज़ कियाः या रसूल अल्लाह! मुझे "ज़िना" की इजाज़त दे दीजिए।

लोगों को उसकी बात पर सख़्त गुस्सा आया लेकिन आप (स0अ0व0) ने उससे फ़रमायाः मेरे क़रीब आओ। जब वो आप (स0अ0व0) के क़रीब आ गया तो आप (स0अ0व0) ने उससे कहाः क्या तुम अपनी माँ के साथ यह हरकत करना पसंद करोगे?

उसने कहाः ख़ुदा की क़सम! बिल्कुल नहीं।

आप (स0अ0व0) ने कहाः दूसरे लोग भी अपनी माओं के साथ इसको पसंद नहीं करते, क्या तुम अपनी बेटी के साथ यह हरकत करना चाहोगे?

उसने कहाः नहीं, ख़ुदा की क़सम! हरगिज़ नहीं।

आप (स0अ0व0) ने कहाः दूसरे लोग भी अपनी बेटियों के साथ इसको पसंद नहीं करते। फिर आपने पूछाः क्या तुम अपनी बहन के साथ ऐसा काम करना पसंद करोगे?

उसने कहाः ख़ुदा की क़सम! नहीं।

आप (स0अ0व0) ने कहाः दूसरे लोग भी अपनी बहनों से यह करना पसंद नहीं करते, क्या तुम अपनी चाचियों से करना पसंद करोगे?

उसने कहाः नहीं, ख़ुदा की क़सम!

आप (स0अ0व0) ने कहाः लोग भी अपनी चाचियों से यह करना पसंद नहीं करते, क्या तुम अपनी ख़ाला से करना पसंद करोगे?

उसने कहाः नहीं, ख़ुदा की क़सम!

आप (स0अ0व0) ने कहाः लोग भी अपनी ख़ालाओं से करना पसंद नहीं करेंगे। फिर आप (स0अ0व0) ने अपना हाथ उस पर रखा और कहाः

"ऐ अल्लाह! इसके गुनाहों को माफ़ फ़रमा, इसके दिल को पाक व साफ़ फ़रमा, इसकी शर्मगाह की हिफ़ाज़त फ़रमा।" (अहमद)

फिर इसके बाद उसने कभी यह न सोचा।

इस नर्म गुफ़्तगू और हकीमाना उसलूब ने यक़ीनन उस नौजवान के दिल की दुनिया बदल दी होगी और उसके दिल में ज़िना की ऐसी नफ़रत पैदा कर दी होगी कि फिर कभी उसके दिल में इस तरह का ख़याल नहीं आया।

इस तर्ज़ का अंदाज़ जब अपनाया जाएगा और इस उसलूब–ए–दावत को इख़्तियार किया जाएगा तो क्या इस्लाम से कोई बरगशता होगा? इस्लामी तालीमात किसी को नफ़रत में मुब्तला कर सकती हैं? उलमा के ताल्लुक़ से जो बद–गुमानियाँ आम हैं, क्या उसका ख़ात्मा इस मोहब्बत और नर्म मिज़ाज से नहीं हो सकता? हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ज़िंदगी को जो हमारे लिए उस्वा बनाया गया है उसमें यह सब है कि कैसे हम आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का तर्ज़–ए–अंदाज़, आपका तर्ज़–ए–ख़िताबत, सब कुछ अख़्ज़ करें और इसी तरीक़े और इख़्लास की इस दौलत के साथ उम्मत में दावत का फ़रीज़ा अंजाम दें।

इल्हाद का तूफ़ान

असबाब और हल

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

हसूल–ए–इल्म व आगही (सूचना) के लिए कुदरत का अनमोल अतिया हवास–ए–ख़म्सा (पाँचों इंद्रियां) हैं, जिनके ज़रिए यक़ीन व ईक़ान का इल्म हासिल कर सकते हैं। फिर भी बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जिनके बारे में हवास न तो इस्बात (सुबूल–दलील) में जवाब देते हैं और न ही नफ़ी में, क्योंकि ये हवास ज़िंदगी के पाबंद और इसकी हद के अंदर महदूद हैं। इसलिए ज़्यादा से ज़्यादा महसूस होने का इनकार किया जा सकता है लेकिन मौजूद होने का इनकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए याद रहना चाहिए कि "महसूस" और "मौजूद" अलग–अलग चीज़ें हैं। इस सिलसिला में एक ख़ास इल्मी उसूल नज़र में रहे कि "अदम–ए–इल्म अदम–ए–वजूद का सबब नहीं होता।" अगर कोई नाबीना अदम–ए–बीनाई के सबब मंज़र न देख सके तो इसका हरगिज़ यह मानी नहीं कि मंज़र मौजूद नहीं है। मौजूद का हवास के ज़रिए इदराक बहुत सी जगहों पर मुमकिन नहीं, वहां अगर अक़्ल–व–ख़िरद के सहारे इन मुअम्मों का हल तलाश किया जाए तो महज़ अक़्ल इस मैदान में तन्हा काफ़ी नहीं और अक़्ल भी बे–बस होती नज़र आएगी। मुद्दियान–ए–अक़्ल–व–ख़िरद ने बहुत से मसाइल के हल की ख़ुद–फ़रेबी में आकर जुस्तजू की और क़यास–आराइयों और नुक्ता–आफ़रीनियों के सहारे मसाइल की तफ़सील और हल का सफ़र किया, इस फ़ल्सफ़ा व मंतिक़ ने बादा–पैमाई के बावजूद ना–रसाई व इल्मी तही–दामन होने का इज़्हार व एतराफ़ किया। यहां शायद इस मिसाल से भी मदद ली जा सकती है जिसे इब्ने ख़ल्दून ने अपने मुक़द्दमा में पेश किया है कि:

"एक शख़्स ने तराज़ू देखी जो सोने का वज़न करने के लिए है, इसको इसी तराजू में पहाड़ों के तौलने का शौक़ पैदा हो गया जो नामुमकिन है, इससे तराज़ू की सेहत पर कोई हर्फ़ नहीं आता लेकिन इसकी गुंजाइश की एक हद है। इसी तरह अक़्ल के अमल का भी एक दायरा है जिससे बाहर वो क़दम नहीं निकाल सकती, वो अल्लाह और उसकी सिफ़ात का अहाता नहीं कर सकती, इसलिए कि वो उसके वजूद का एक ज़र्रा है।"

हक़ीक़त तो यह है कि इन इलाहियाती उलूम–व–मसाइल के हल में अख़्लाक़ी विजदान और मज़हबी ईमान की ज़रूरत होती है, जिसकी असास–व–उसूल वही–ए–इलाही और मुनज़्ज़ल किताब है जो हम तक नुबुव्वत और रिसालत के ज़रिए पहुँचे हैं।

सच तो यह है कि एक ज़माना तक इंसान ख़ुद–तराशीदा बुतों की परस्तिश करता रहा और जब इन बुतों और बे–बस ख़ुदाओं की जगह न रही तो ख़ुद–साख़्ता फ़ल्सफ़ा व नज़रिया को बुत बनाकर उसकी परस्तिश में लग गया। इस ख़ुद–साख़्ता नुक्ता–हाए– नज़र में तेज़ी से इज़्तिराब–व–तलातुम और तूफ़ान आए, इसलिए हालात में तेज़ी से तब्दीली व बदलाव की बिना पर इस्लाम के मुक़ाबले में ये तमाम फ़ल्सफ़े नाकाम नज़र आए और आगे चलकर बे–बस व आजिज़ होना नुमायाँ हो गए। इसके साथ इंसान व इंसानियत को इस मक़ाम पर ले आए कि तबाही व बर्बादी के सामान उसके सरों पर ले आए। यह सब कुछ इसलिए हुआ कि मज़हबी हिदायत, अंबियाई तालीमात और रहनुमाइयों को अंगेज़ करके माज़ी की तलाश और मुस्तक़बिल की फ़िक्र में इंसानी ज़हन में उभरने वाले बुनियादी सवालात को हल करने के लिए उलूम–ए–अक़्ली और फ़ल्सफ़ा–व–साइंस को ख़ुदा समझ लिया गया, यह भी न देखा गया कि फ़ल्सफ़ा–व–साइंस की हद–ए–परवाज़ क्या है? जबकि यह एक ना–क़ाबिल–ए–तरदीद हक़ीक़त है कि फ़ितरत और साइंस सबूत देते हैं कि कायनात का एक ख़ुदा है।

मज़हब ही है जो इंसानी ज़हन व अक़्ल में उभरने वाले तमाम बुनियादी सवालात के तशफ़्फ़ी–बख़्श जवाब देता है, उसने हर तरह के शक–व–इर्तियाब से बुलंद होकर और इंसानी अक़्ल–व–फ़हम को तख़मीन–व–ज़न के जाँ–गसल दर्द–व–तकलीफ़ से बचाकर हक़ीक़त–व–सदाक़त से रोशनास कराया, यक़ीन की ला–ज़वाल नेअमत अता की और इस्लाम की बेश–क़ीमत दौलत से माला–माल किया। इसके बरख़िलाफ़ फ़ल्सफ़ा और इसकी एक अहम शाख़ "मा–बाद–उत–तबीयत" (डमजंचीलेपबे) ने इन सवालात को छेड़ने की बे–बाकाना जुर्रत की जिनकी गिरह–कुशाई का हक़ सिर्फ़ और सिर्फ़ मज़हब का था। इसने ग़ैबी हक़ाइक़ और मज़हबी उमूर को अक़्ल–व–दानिश की गिरफ़्त में लाने की ग़ैर–ज़रूरी कोशिश की, मौलाना अब्दुल बारी नदवी (रह0) ने बिल्कुल सच कहा है कि:

"साइंसी क़वानीन और वहशियों, जंगलियों के देवी–देवताओं में कुछ ज़्यादा फ़र्क़ नहीं।'' (मज़हब व साइंसः २३६)

फ़लसफ़ा और अहल–ए–साइंस के यहाँ बेशुमार इंसानी ज़रूरियात और इंसानी ज़हन–व–दिमाग़ में उभरने वाले अहम मसाइल का कोई सही हल मौजूद नहीं, उनको अपनी अज्ज़–व–दरमांदगी और कोताह–बीनी व कोताह–दस्ती का अहसास और इसका एतराफ़ भी है।

दौर–ए–कोहना के हुकमा में खुद हकीम सुक़रात (Socrates) जिनके फ़ल्सफ़ियाना नज़रियात–व–अफ़कार को फ़िक्र–व–नज़र और अक़्ल–व–दानिश की तारीख़–ए–इर्तिका में नुक्ता–ए–उरूज माना जाता है, उसने एतराफ़ करते हुए अपने ख़याल का इन अल्फ़ाज़ में इज़हार किया है कि "हम इतना भी नहीं जानते कि नहीं जानते।" (वही–ए–इलाहीः १०, तबअ देहली)

एक मशहूर फ़ल्सफ़ी डेविड ह्यूम (David Hume) ने भी जो इर्तियाबी (Skeptic) था, खुले अल्फ़ाज़ में अक़्ल–ए–इंसानी की कोताही व फ़िक्र की ना–रसाई व अज्ज़ का एतराफ़–व–इक़रार किया हैः "इंसानी अक़्ल मख़लूक़ है और इस लिहाज़ से इल्म इसकी ख़ास ग़िज़ा है लेकिन साथ ही इंसान ज़ी–अक़्ल–व–फ़हम के हुदूद इतने तंग हैं कि इस बाब में इसको वुसअत–व–इज़आन दोनों हैसियत से बहुत ही कम फ़तूहात से तशफ़्फ़ी नसीब हो सकती है।" (वही–ए–इलाहीः १०, तबअ देहली)

अहद–ए–जदीद में फ़ल्सफ़ा–व–कलाम के मुतकल्लिम–व–मुअल्लिम मौलाना अब्दुल बारी नदवी (रह0) ने जिनकी मज़हब–व–अक़्लियात की हमह–दानी का ज़माना को एतराफ़ है, "फ़हम–ए–इंसानी" के मुक़द्दमा में लिखा हैः "मुकम्मल से मुकम्मल फ़ल्सफ़ा–ए–तबई भी सिर्फ़ यह करता है कि हमारे जहल को ज़रा और दूर कर देता है, जिस तरह मुकम्मल से मुकम्मल फ़ल्सफ़ा–ए–मा–बाद–उत–तबीयत और अख़लाक़ियात का सिर्फ़ यह काम होता है कि हमारे इस जहल के वसीअ हिस्सों की पर्दा–दरी कर देता है, मतलब यह है कि फ़ल्सफ़ा असरार–ए–कायनात की नहीं, सिर्फ़ हमारे जहल की पर्दा–दरी करता है, इसका हासिल अगर कुछ था या हो सकता है तो इंसान की कमज़ोरी और कोर–चश्मी का तमाशा देखना–दिखाना जिससे भागने की कोशिश के बावजूद बार–बार दो–चार होना पड़ता है।" (फ़हम–ए–इंसानीः ३१, आज़मगढ़)

फ़ल्सफ़ा की क़दीम–व–जदीद तारीख़ का जायज़ा लिया जाए तो इसका कमाल–ए–दानिश–व–ख़रिद यह है कि नहीं जानता, साथ ही यह हक़ीक़त ना–क़ाबिल–ए–इंकार है कि ज़वाहिर–ए–आलम के बारे में हम बहुत कुछ जानते या जान सकते हैं लेकिन हक़ाइक़–ए–आलम की निस्बत कुछ जानने का दावा करें तो निरा जहल–ए–मुरक्कब होगा। फ़ल्सफ़ा–व–साइंस ने जहाँ इसको अक़्ल–व–ख़रिद की रौशनी में तजुर्बा की राह पर हल करने की फ़िक्र–व–कोशिश की तो इससे चंद क़दम भी आगे बढ़ा नहीं सका कि शक–व–इर्तियाब, जहल–व–ला–इल्मी के दलदल में फँसकर रह गया। क़दीम फ़ल्सफ़ा का आग़ाज़ जिस तिफ़लाना तजस्सुस से हुआ था, पीराना शक–व–इर्तियाब और ला–अदरियत (Agnosticism) पर ख़ात्मा हो गया, लेकिन जदीद फ़ल्सफ़ा ने इसी पीराना शक–व–इर्तियाब की कोख से जन्म लिया, जल्द ही इसकी मायूसी और अज्ज़ सामने आएगी और मज़हब के ज़ेर–ए–असर आकर वही–व–इल्हाम के दामन में पनाह लेगी। क्योंकि श्तारीख़ मसाइल फ़ल्सफ़ाश में जाइंट (श्रंदमज) ने लिखा है:

"हम को हसूल–ए–सदाक़त से मायूस हो जाना चाहिए अलावा इस सूरत के कि हम यह मान लें कि इसका इल्म बराह–ए–रास्त खुद इसी की ज़ात की तरफ़ से अता होता है जो इसका अबदी सरचश्मा है यानी खुद खुदा की तरफ़ से और यही वह आख़िरी हल था जो नौ–अफ़लातूनिये (Neo&Platonists) ने इख़्तियार किया और जिसको इर्तियाबियत ने ना–गुज़ीर कर दिया था, इल्मी तफ़क्कुर की राह से हसूल–ए–यक़ीन की मायूसी ही इस पर मजबूर कर सकती थी कि सदाक़त को श्वहीश के अंदर पाने की कोशिश की जाए जो फ़िक्र से बाला–तर है।" (फ़हम–ए–इंसानीः १२, ब–हवाला तारीख़ मसाइल फ़ल्सफ़ाः ११४)

फ़ल्सफ़ा–ए–जदीद ने शक–व–इर्तियाब की जिस वादी से अपने सफ़र का आग़ाज़ किया था, उसने इस शक को ना–क़ाबिल–ए–शक बनाने की ख़ातिर इसकी तलाश के लिए था और वह शक के हुदूद से बाहर नहीं आ सका, यही वजह है कि मौलाना अब्दुल बारी नदवी ने फ़रमाया कि "सच यह है कि इसके बाद जदीद फ़ल्सफ़ा की तारीख़ ज़्यादातर नाम बदल–बदल कर खुले या छुपे इक़रार–ए–जहल की तारीख़ बनकर रह गई, लॉक (स्वबाम) के यहाँ यह इक़रार हसियत के नक़ाब में है और बर्कले (Berkeley) के यहाँ इद्दआ–ए–तसव्वुरियत के मगर इतनी बारीक और शफ़्फ़ाफ़ कि रूपोशी से ज़्यादा रुनुमाई की ज़ीनत है, आख़रि बर्कले के बाद ही डेविड ह्यूम ने इस रुनुमा नक़ाब को भी तार–तार कर दिया और न सिर्फ़ जहल–व–इर्तियाबियत का खुलकर इक़रार किया बल्कि अपने को इर्तियाबी ही कहलाना पसंद किया।" (फ़हम–ए–इंसानीः १३)

इल्हाद और ला–मज़हबी दौर के तारीखी पस–ए–मंज़र में अगर झांक कर देखा जाए तो नज़र आएगा कि इसकी ख़श्त–ए–अव्वल कज है, इसकी सरिश्त में खुदा–बेज़ारी, दीन–ए–फ़ितरत से इनहिराफ़, आख़रित–फ़रामोशी और जिन्सी बे–राह–रवी व अनार्की जैसी सिफ़ात पिन्हाँ हैं और रूहानी ज़वाल व अख़्लाकी अफ़लास और मज़हब दुश्मनी माद्दा व माद्दियत की मशलूल तरक़्क़ी है। (जारी)

रात के आख़िरी पहर

मुहम्मद मुसअब नदवी

मौसम–ए–सरमा के साथ ही हवाओं के तेवर बदल जाते हैं, हर सिम्त यख़–बस्ता (बर्फ़ीली) हवाओं का राज होता है। सर्द हवा की बे–रहम लहरें इंसानी वजूद को कपकपाने पर मजबूर कर देती हैं। कई–कई दिन आसमान पर लाली का नाम–ओ–निशान तक नहीं होता है, सूरज की किरनें गोया ज़मीन से सीधे मुँह बात नहीं करती हैं। सर्द इलाक़ों में तो कोह–ओ–दमन (पहाड़ और घाटियाँ) बर्फ़ की सफ़ेद चादर ओढ़ कर ख़ामोशी की नींद सो जाते हैं और यहाँ सुरमई बादल बड़ी शान के साथ आसमान को अपनी जागीर बना लेते हैं। परिंदे अपने आशियानों में दुबके होते हैं। औलाद–ए–आदम घरों से बहुत कम निकलती है। ठंडी हवाएं उन्हें अंगीठी से चिमटे रहने पर मजबूर कर देती हैं। दिन मुख़्तसर हो जाते हैं और रातें दराज़। गोया वक़्त भी सर्दी के बोझ तले आहिस्ता–आहिस्ता चल रहा होता है। ऐसी रुत में रात का आख़िरी पहर और भी भारी महसूस होता है। जब सारी कायनात पर नींद की मदहोशी तारी होती है। जब सर्दी नुक्ता–ए–इंजिमाद (थ्तमम्रपदह चवपदज) को छू रही होती है, लोग अपने नर्म–ओ–गर्म बिस्तरों में दुबके ख़्वाबों की दुनिया में खोये होते हैं, ऐसे वक़्त में भी कुछ नुफ़ूस होते हैं जो नींद को ख़ैर–आबाद कह कर बिस्तर–ए–मख़मल–ओ–संजाब को छोड़ देते हैं और ठंडे पानी से खुद को भिगो लेते हैं और अपने परवरदिगार के हुक्म पर लब्बैक कहते हुए उसकी बारगाह में हाज़िर हो जाते हैं। सारी कायनात के मालिक के सामने पेशानी झुका देते हैं। उसकी हम्द–ओ–सना बयान करते हैं और रात–ओ–दिन के उलट–फेर, मौसमों के तग़य्युर (बदलाव) में कुदरत–ए–इलाही की निशानियाँ तलाश करते हैं।

ये कौन लोग हैं जो पुर–लुत्फ़ नींद के मज़े को ठुकरा देते हैं?

क्या उन्हें उठने से पहले अपने नफ़्स को समझाना नहीं पड़ता?

क्या उन्हें सर्दी का अहसास नहीं होता?

क्यों नहीं! वो भी तो मिट्टी ही से बने हुए हैं। उनके जिस्म भी सर्दी से कांपते हैं। उनके दिल भी आराम चाहते हैं मगर फ़र्क़ यह है कि वो अपने हक़ीक़ी मोहसिन, अपने रब्ब–ए–करीम की एहसान–फ़रामोशी नहीं करना चाहते। उन्हें अपने परवरदिगार की ना–फ़रमानी करते हुए हया आती है। उनके दिल ज़िंदा हैं मगर ये दिल दुनिया के शोर से नहीं, खुशू–ए–इलाही से मामूर हैं।

अल्लाह ताला फ़रमाता है:

"यक़ीनन नमाज़ बहुत भारी है मगर उन लोगों पर नहीं जो खुशू रखते हैं।"

खुशू वह कैफ़ियत है जिसमें दिल पूरे इन्हिमाक के साथ अल्लाह की तरफ़ मुतवज्जेह हो जाता है। यह महज़ ख़ौफ़ नहीं और न ही सिर्फ़ मोहब्बत, बल्कि यह मोहब्बत की रिदा में लिपटा हुआ अपने ख़ालिक़ का लिहाज़ और उसका डर है, एक ऐसा लिहाज़, एक ऐसी खटक जो बंदे को बार–बार अपने रब की तरफ़ खींच लाती है। बिल्कुल इसी तरह जैसे माँ–बाप की तात (आज्ञापालन) सिर्फ़ मोहब्बत या सिर्फ़ डर की बुनियाद पर नहीं होती बल्कि दिल में यह अहसास भी होता है कि कहीं उनकी नज़र में हमारी क़द्र कम न हो जाए, कहीं हमारा तास्सुर ख़राब न पड़ जाए। यही कैफ़ियत जब अल्लाह के साथ पैदा हो जाए तो बंदा गुनाह से रुक जाता है और इबादत में लज़्ज़त महसूस करने लगता है, उसे अपनी हक़ीक़त का इदराक हो जाता है, वह

समझ चुका होता है कि ये दुनिया की मुख़्तसर सी आज़माइश है जिसके बदले में जन्नत की पुर–लुत्फ़ दाइमी हयात (हमेशा की ज़िंदगी) है और सबसे बढ़कर अपने रब, अपने महबूब की रज़ा है। फिर नमाज़ बोझ नहीं रहती बल्कि दिल का सहारा बन जाती है, ख़ुदा के अहकाम को बजा लाने में एक ना–मालूम सा लुत्फ़ महसूस होता है, सारी ज़िंदगी का महवर, सारी हयात का हासिल ख़ुदा की आशिक़ी और उसकी बंदगी में जीना और मरना बन जाता है।

यही वह कैफ़ियत थी जो हमारे हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के असहाब के अंदर जलवा–गर थी, जो उन्हें रातों को जगाए रखती थी। मदीना मुनव्वरा की सर्द रातें हों या सहरा की बर्फ़ीली हवाएं, पहाड़ी सफ़र हों या जंग का मैदान, हर वक़्त वो इसी ख़ुशू–ए–इलाही की कैफ़ियत में मुस्तग़रक़ होते थे। कहीं सय्यदना अबू बक्र (रज़ियल्लाहु अन्हु) की आह–ओ–ज़ारी है जो तारिकियों को शक़ करती हुई अर्श–ए–इलाही तक पहुँच रही होती है, तो कहीं रात के अँधेरे में मदीना की गलियों में अमीर–उल–मोमिनीन सैय्यदना उमर फ़ारूक़ के वो गश्त हैं। कहीं हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) के वो ख़ुशू से मामूर सज्दे हैं कि तीर निकाल लिया जाता है और उनकी इबादत में कोई ख़लल नहीं पड़ता। तो कहीं रात के परदे में हज़रत उस्मान ज़ुन–नूरैन की वो पुर–कैफ़ इबादत है। कहीं वो आँखें हैं जो ख़ौफ़–ए–ख़ुदा में अश्कबार हैं, हाँ कहीं वो नर्म दिल भी हैं जो अपने रब के हुज़ूर लरज़ रहे होते हैं मगर वही बातिल के सामने फ़ौलाद भी हैं।

ज़रा इन मुजाहिदीन–ए–इस्लाम को भी देखिये जो अपने घरों से कोसों दूर माँ की दुआओं और बाप की नसीहतों को सीने से लगाए हुए, बीवी और बच्चों की हसीन यादों की मुस्कराहटों के साथ दिल में ख़ुदा की मोहब्बत लिए हुए बर्फ़ानी पहाड़ियों, वीरान सहराओं और अजनबी सरज़मीनों में अल्लाह के दीन के लिए खड़े हैं। कहीं दिन के उजाले में ख़ालिद बिन वलीद के फ़लक–शिगाफ़ नारों की सदा है, घोड़ों की हिनहिनाहट और तलवारों की झंकार है, अबू उबैदा बिन अल–जर्राह की उलू–अल–अज़्म दास्तान है, तारिक़ बिन ज़ियाद और मूसा बिन नुसैर की शानदार फ़तह है, सलाहुद्दीन अय्यूबी और नूरुद्दीन ज़ंगी की जुर्रत–ओ–अज़ीमत के वाक़्यात हैं, मगर इन सबके बावजूद शाम ढलते–ढलते आप देखेंगे जब रात अपने पुर–सुकून दामन को फैलाती है, यही अज़ीम फ़ातेह व जरनैल अपने–अपने हथियार एक तरफ़ रख कर ख़ुदा के हुज़ूर आजिज़ी व इन्किसारी के साथ खड़े हैं, उन पर एक गिरिया (रोना) तारी है, यह सब किसकी ख़ातिर है? महज़ उस रब्ब–ए–जुल–जलाल की मोहब्बत–ओ–तात और बंदगी की ख़ातिर है। यह वो लोग हैं जिनके लिए मौत कोई हादसा नहीं बल्कि एक वादा है। ज़िंदगी कोई आसाइश नहीं बल्कि अमानत है, उनकी आँखों में नींद कम और रब से मुलाक़ात का इंतज़ार ज़्यादा है, उनके दिल में मा–सिवा अल्लाह तमाम मोहब्बतें मग़लूब हैं और यही मोहब्बत और यही फ़िक्र उन्हें दुश्मन के सामने फ़ौलाद बना देती है।

सच यह है कि यही मोहब्बत–ए–इलाही व ख़ौफ़–ए–ख़ुदा जिसके दिल में भी जा–गुज़ीं हो जाए, उसके लिए हर रियाज़त व इबादत आसान हो जाती है। हक़ की राह पर डट जाने का जज़्बा उसके अंदर मौजज़न रहता है, फिर न मौसम की सख़्ती, न हालात की तंगी, न मुंजमिद कर देने वाली सर्दी उसके इरादों को पस्त कर सकती है, न बारगाह–ए–इलाही की तरफ़ उसके बढ़ते हुए क़दम को डगमगा सकती है और बातिल की बड़ी से बड़ी ताक़त भी उसे राह–ए–हक़ से हटा नहीं सकती है। यही वो ख़ुदा का लिहाज़ है जिसको हमें अपने अंदर पैदा करना है जो बंदे को अँधेरी रातों में जगाता है, सर्दी की शिद्दत में भी सज्दे पर गिरा देता है और दुनिया के हंगामों के बीच अल्लाह से जोड़े रखता है, यही बंदगी की असल रूह है और यही वो दौलत है जो इंसान को इंसान बनाती है।

एक अज़ीम कुर्बानी की ज़रूरत

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

इसमें शुब्हा नहीं कि किसी भी क़ौम का उरूज–ओ–ज़वाल उसके नौजवानों पर मुनहसिर होता है। अगर किसी क़ौम का नया खून गर्म और मुतहर्रिक (गतिशील) है, उसके अंदर मक़सदियत और अमल का जज़्बा है और उसके अंदर सरफ़रोशी की तमन्ना और कुछ कर गुज़रने का हौसला है तो उस क़ौम का सितारा–ए–इक़बाल तुलू होने से दुनिया की कोई ताक़त नहीं रोक सकती और अल्लाह का क़ानून भी यही है कि अगर इस दुनिया में कोई मेहनत करेगा तो उसकी कोशिश राइगाँ नहीं जा सकती, इरशाद हैः

"और इंसान को वही मिलेगा जिसकी उसने मेहनत की।" (अन–नज्मः ३९)

अहद–ए–सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) में जब यह कोशिश हुई तो दुनिया ने हैरत–अंगेज़ कारनामे देखे। हुज़ूर (अलैहिस्सलातु वस्सलाम) ने अपनी वफ़ात से क़ब्ल सहाबा के एक लश्कर का अमीर हज़रत उसामा बिन ज़ैद (रज़ि0) को बनाया, वो एक नौजवान ही थे और ग़ालिबन उनकी उम्र सत्रह या अठारह साल थी। हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि0) जिन्होंने तदवीन–ए–कुरआन की ख़िदमत सबसे बढ़कर अंजाम दी, वो भी एक नौ–उम्र सहाबी थे और उनकी उम्र सोलह या सत्रह साल से मुतजाविज़ न थी। इसी तरह हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की शख़्सियत और उनकी कम–उम्री से कौन ना–वाक़िफ़ होगा। इनके अलावा भी एक बड़ी तादाद इन हज़रात सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) की है जिन्होंने शिर्क–ओ–कुफ़्र का क़ला–क़मा किया और अरब–ओ–अजम में इस्लाम का फरेरा लहराया। बिला–शुबह इनकी नज़ीर पेश करने से आज भी दुनिया–ए–इंसानियत आजिज़ है।

सच्ची बात यह है कि तारीख़–ए–इस्लामी के मुख़्तलिफ़ अदवार में ऐसे नौजवान और अफ़राद–ए–कार पैदा होते रहे हैं जिन्होंने ज़माने का रुख़ मोड़ दिया और वक़्त का धारा तब्दील कर दिया था। अगर यह कहा जाए तो शायद ग़लत न होगा कि बर्र–ए–सग़ीर में भी जो इस्लाम फला और फूला, वो एक नौजवान ही के आहनी अज़्म और आक़िलाना नज़्म का नतीजा था। मुहम्मद बिन क़ासिम सक़फ़ी तक़रीबन अठारह साल की उम्र में यहाँ फ़ातेहाना दाख़िल हुए और उन्होंने सिर्फ़ जिस्मों ही पर नहीं बल्कि दिलों पर भी हुकूमत की। तारीख़ में सुल्तान मुहम्मद फ़ातेह का नाम भी मिटाया नहीं जा सकता जिन्होंने ग़ालिबन इक्कीस या बाईस साल की उम्र में अपनी ज़बरदस्त हिकमत–ए–अमली से कुस्तुंतुनिया (Constantinople) पर फ़तह का अलम नसब किया था।

अख़ीर दौर में हज़रत सैय्यद अहमद शहीद (रह0) की मुजाहिदाना ज़िंदगी भी एक ग़ैर–मामूली मिसाल है जिनके मुताल्लिक़ बाज़ अहल–ए–दिल ने यह गवाही दी है कि हम उन्हीं की तजदीद के ज़ेर–ए–साया जी रहे हैं। उन्होंने हिंदुस्तान में सबसे पहले अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जिहाद का अलम बुलंद किया, हज के फ़रीज़े और बेशुमार मतरूक सुन्नतों का अह्या किया और उनकी ज़ात से एक आलम को फ़ैज़ पहुँचा लेकिन उनकी पूरी मुद्दत–ए–उम्र मुश्किल से ४५ साल रही जिसमें उन्होंने ईमान की बाद–ए–बहारी चला दी।

मौजूदा दौर में अगर हम नौजवान तबक़ा का जायज़ा लें तो पंद्रह से पच्चीस साल तक की उम्र वाले या इससे भी मुतजाविज़ नौजवानों का हाल इन्तिहाई ना–गुफ़्ता–ब है। आम तौर पर यह उम्र पढ़ने–लिखने, डिग्री हासिल करने, हुनर सीखने और अपने पैरों पर खड़े होने के बाद शादी के लाइक़ होने की समझी जाती है। अगर किसी का कोई बहुत बड़ा टारगेट है तो ज़्यादा से ज़्यादा इतना कि वो कोई अफ़सर बन जाए या बड़ा ताजिर वग़ैरह। ग़रज़ कि अगर एक–एक इलाक़े का सर्वे किया जाए तो शायद ऐसे नौजवान उंगलियों पर गिने जा सकते हों जिनके अंदर अपनी ज़ात से आगे बढ़कर क़ौम–ओ– उपससंज के लिए कुछ करने का जज़्बा और अहसास हो।

बिला–शुबह यह सूरत–ए–हाल इन्तिहाई तशवीश–नाक है। जब क़ौम का नया खून ही सर्द पड़

जाए और तेज़–ओ–तुंद हवाओं बल्कि तूफ़ानों से भी उसका ज़मीर बेदार न हो तो उस क़ौम को बर्बाद करने के लिए किसी ख़ारजी दुश्मन या एटमी ताक़त की ज़रूरत नहीं बल्कि वो खुद क़अर–ए–मज़ल्लत (ज़िल्लत की गहराई) में धंसती चली जाएगी। हैरत की बात है कि जिस उम्र में तारीख़–ए–इस्लामी के मुमताज़ नौजवानों ने मिल्लत–ए–इस्लामिया का सर फ़ख़्र से बुलंद किया था, उस उम्र में आज का नौजवान तबक़ा अपने मुस्तक़बिल को सँवारने और बनाने से भी क़ासिर नज़र आता है।

वक़्त का ज़िया, बे–मक़सदियत, बे–हिसी और ला–शुऊरी व ग़फ़लत इस दौर का एक बड़ा मर्ज़ है, इसी मर्ज़ ने हमारे नौजवानों की ताक़त को दीमक की तरह चाट कर खोखला कर दिया है। अल्लाह तबारक व ताला ने ज़हन–ओ–दिमाग़ की जो कुव्वत और सलाहियत लोगों को नफ़ा पहुँचाने के लिए दी थी, आज वो ताक़त बे–महल ख़र्च हो रही है। न फ़राइज़ का एहतमाम है और न हुक़ूक़–ओ–वाजिबात का ख़याल, बल्कि मोबाइल और सोशल मीडिया से दुनिया शुरू होकर इसी पर ख़त्म हो जाती है। जिस वक़्त को दीन–ए–इस्लाम के तक़ाज़ों और अपने रोशन मुस्तक़बिल की तामीर में ख़र्च होना चाहिए था, आज वो वक़्त नशे की नज़र हो रहा है और यह नशा सिर्फ़ शराब का नहीं बल्कि इस तरक़्क़ी–याफ़्ता दुनिया में नशे की भी मुतअद्दिद शक्लें हैं जैसेरू वीडियोज़ स्क्रॉलिंग का नशा, गेमिंग का नशा, ब्लॉगिंग का नशा, सिर्फ़ अच्छा खाने और अच्छा पहनने का नशा, बे–मक़सद घूमने–फिरने का नशा, महंगी से महंगी अशिया ख़रीद कर अपने शौक़ पूरे करने का नशा, बद–निगाही का नशा, फ़ुहश मनाज़िर का नशा, नफ़्स–परस्ती का नशा, हलाल–ओ–हराम के दरमियान तमीज़ न करने का नशा वग़ैरह।

वाक़िया यह है कि नशे की ये वो शक्लें हैं जिनमें बाज़ मर्तबा वो लोग भी गिरफ़्तार नज़र आते हैं जिनको समाज में दीन–दार तबक़ा के अंदर शुमार किया जाता है। इसके अलावा नशे की वो शक्लें जो सरीह तौर पर हराम और तबाह–कुन हैं, हमारे नौजवानों की एक बड़ी तादाद इन नशों की भी बुरी तरह आदी है और इसका नतीजा यह है कि आज न हमारे नौजवानों का मुस्तक़बिल ताबनाक है, न उनके घर वालों और क़ौम वालों को उनसे कोई बड़ी तवक़्क़ुआत वाबस्ता हैं और न ही खुद उनके अंदर वो हक़ीक़ी सेहत–ओ–कुव्वत बाक़ी है जो एक नौजवान का तुर्रा–ए–इम्तियाज़ होता है।

क़ुर्बान जाएँ नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर जिन्होंने भटकी हुई इंसानियत को सही सिम्त अता की और मुर्दा दिलों की मसीहाई का फ़रीज़ा अंजाम दिया। आप (स0अ0व0) ने न सिर्फ़ यह कि ख़ालिक़ को मख़लूक़ से जोड़ने का काम किया बल्कि इस दुनिया–ए–इंसानियत को एक ऐसा कामिल–ओ–मुकम्मल निज़ाम भी अता फ़रमाया जो क़यामत तक के लिए काफ़ी है और हर इंसान की तामीर–ओ–तश्कील और उसकी फ़लाह–याबी का राज़ इसमें मुज़मर है। नौजवानों के मुताल्लिक़ आप (अलैहिस्सलातु वस्सलाम) ने ख़ास तौर पर यह बात इरशाद फ़रमाई थीः

"दो नेमतें ऐसी हैं जिनके सिलसिला में अक्सर लोग ग़फ़लत में हैं; एक सेहत और दूसरे फ़ुर्सत का वक़्त।" (बुख़ारीः 6412)

यह हदीस हमें यह पैग़ाम देती है कि हम अपने ज़माना–ए–सेहत–ओ–कुव्वत को कार–आमद बनाएँ और अपनी ज़िंदगी को मुनज़्ज़म–ओ–मुरत्तब बनाएँ। ख़ुश–क़िस्मत है वो नौजवान जिसने अपनी उम्र–ए–अज़ीज़ के एक–एक लम्हे की क़द्र की, इससे नफ़ा हासिल किया और अपने वक़्त को ज़ाया होने से बचा लिया।

किसी मर्द–ए–दाना ने बड़ी आरिफ़ाना बात इरशाद फ़रमाई थी कि इस वक़्त यह उम्मत बे–दीन भी है और बे–बस भी। ऐसे हालात में ज़रूरत है कि इस मिल्लत का नौजवान तबक़ा ना–खुदाई का फ़रीज़ा अंजाम देने के लिए आगे आए, दुश्मन–ए–दीन की चालों को नाकाम बनाने का अज़्म करे और इस दीन को सर–बुलंद करने के लिए तन–मन–धन की बाज़ी लगा दे। इस वक़्त हर सतह पर काम करने की शदीद ज़रूरत है, ज़रूरत स्कूलों के अंदर दबे पाँव इरतदाद का तूफ़ान रोकने की भी है और ज़रूरत मदारिस के अंदर बढ़ती हुई ग़फ़लत और बे–मक़सदियत को ख़त्म करने की भी है। ज़रूरत सरमाया–दार और मुलाज़िम–पेशा तबक़े में दीन पर एतमाद बहाल करने की भी है और ज़रूरत हर शोबे में "इस्लामाइज़ेशन" करने की है और इसमें शुबह नहीं कि यह काम जिस क़द्र मुस्तैदी और हमह–गीरी के साथ नौजवान तबक़ा अंजाम दे सकता है, कोई दूसरा शायद ही इसके ब–क़द्र अंजाम दे सके।

(शायद अल्लाह इसके बाद कोई नई बात पैदा कर दे।) (अत–तलाकः 1)

हमारी नाकामी की एक बड़ी वजह

"यह एक हक़ीक़त है कि हम जगह–जगह नाकाम हैं और हमें अपनी नाकामी का एहसास भी है और नाकामी के अस्बाब (कारणों) की तलाश भी। नाकामी की एक बड़ी वजह अगर यह क़रार दी जाए कि हम रेत के ज़र्रात (कणों) की तरह बिखरे हुए और ख़ुद–रौ (जंगली) पौधों की तरह इधर–उधर उगे हुए हैं तो शायद यह ग़लत न होगा। हमें सिर्फ़ अपनी ज़ात से दिलचस्पी है, सिर्फ़ अपनी इज़्ज़त–ओ–शोहरत और दौलत–ओ–मन्सब की फ़िक्र है। अपनी ज़ात के खोल से जब हम बाहर निकलते हैं तो औलाद तक पहुँच कर हमारे क़दम रुक जाते हैं। ख़्याल अब सिर्फ़ यह रहता है कि हमारी औलाद पढ़ जाए, जल्दी से काम में लग जाए और एक ख़ुश–हाल और आराइश–ओ–आसाइश (आरामदायक) से भरपूर ज़िंदगी गुज़ारने का उसे मौक़ा मिल जाए। औलाद से ऊपर उठते हैं तो अपनी तंज़ीम, अपनी पार्टी, अपनी सोसाइटी और अपने इदारे में महसूर (घिरे) होकर हर तरफ़ से अपनी आँखें मूंद लेते हैं। यही हमारी सोच का दायरा और यही हमारी फ़िक्र का मेहवर (धुरी) है।

क़ुरआन–ए–करीम ने फ़िक्र–ओ–तदब्बुर और अक़्ल–ओ–शऊर के इस्तेमाल पर जितना ज़ोर दिया है। मिल्लत में इसका एहसास बहुत कम पाया जाता है। अफ़सोस कि कुछ दूसरी क़ौमें अक़्ल–ओ–शऊर से काम लेने में हमसे बहुत आगे बढ़ गई हैं मगर उन्होंने इस हथियार का इस्तेमाल सिर्फ़ माद्दी (भौतिक) पहलुओं को सामने रखकर किया है। उनके बरख़िलाफ़ हम ने अक़्ल पर जज़्बात को तरजीह दी और यही जज़्बातियत अब हमारी शिनाख़्त (पहचान) बन गई है। जोश ने हमें दीवाना और होश से हमें बेगाना कर दिया। जज़्बात की रौ में बहना ही अब हमारा शेवा (आदत) बन गया है। नतीजा इसका शिकस्त, नाकामी और रुसवाई की शक्ल में हमारे सामने आ रहा है। हमारा हाल यह है कि हम हांडी को तेज़ आँच में पका कर जला तो सकते हैं लेकिन उसको धीमी आँच में पका कर खाने के लायक़ नहीं बना सकते। हम सारी उम्मीदें दूसरों से रखते हैं और ख़ुद उन उम्मीदों पर पूरा उतरने की कोई कोशिश नहीं करते।

मस्जिद के सामने ग़ैर–मुस्लिम की बारात गुज़रती है, नाच होता है, ढोल बजता है, हमें बुरा लगता है, क्योंकि नमाज़ में ख़लल पड़ता है, नमाज़ का एहतिराम और मस्जिद का तक़द्दुस (पवित्रता) हमें एहतिजाज (विरोध) करने पर मजबूर करता है। लेकिन यही बारात जब किसी मुसलमान की होती है और मस्जिद के सामने ख़ूब धमा–चौकड़ी मचती है या नौजवानों की एक टोली मस्जिद के दरवाज़े पर हुल्लड़–हंगामे में लगी रहती है तो हमारी ग़ैरत इतना जोश नहीं मारती, क्योंकि मसला मस्जिद का नहीं अपनी नाक का होता है।"

मौलाना जाफ़र मसऊद हसनी नदवी (रह०)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 02 ❁ February 2026 ❁ Volume: 18

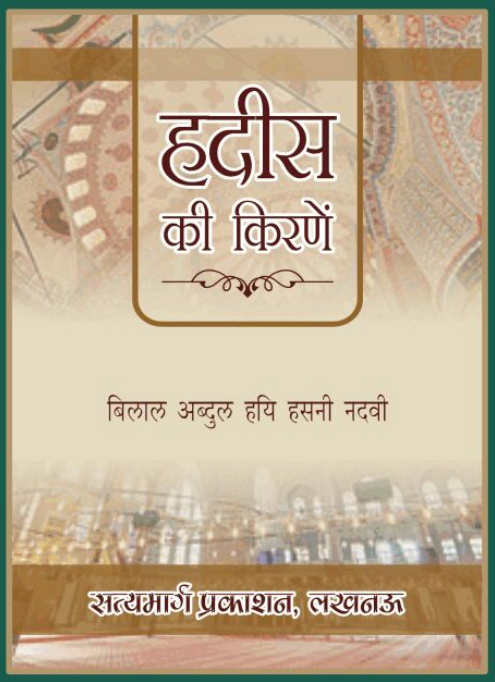

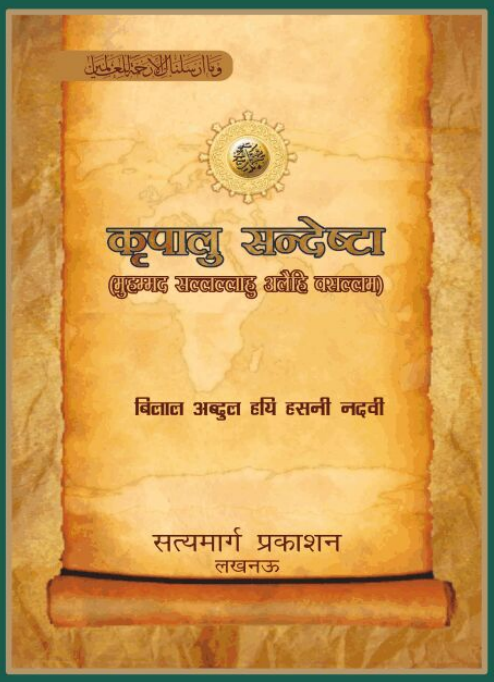

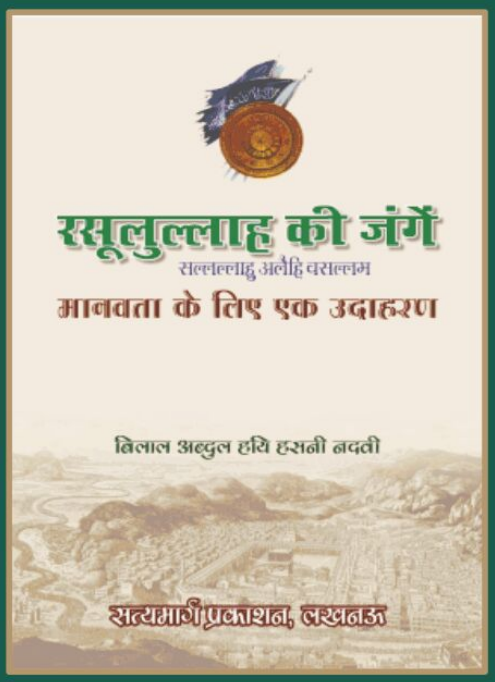

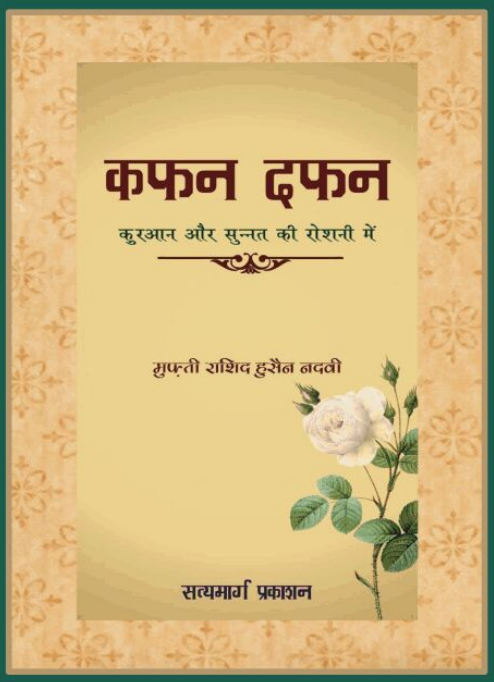

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.